गंगा-पुस्तकमाला का २०८वाँ पुष्प

समाज और राजनीति

[प्रगतिशील दृष्टि-कोण-युक्त निबंध]

लेखक
नरोत्तमलाल गुप्त 'नरेंद्र'
एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्य-रत्न
(जीवन रेखाएँ, बाहर-भीतर, विचार-बिंदु
आदि पुस्तकों के रचयिता)

—:*:—

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, गौतम बुद्ध-मार्ग
लखनऊ

पहली बार] सन् १९५७ [मूल्य ३)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, ३६, गौतम बुद्ध-मार्ग, लखनऊ
२. भारती(भाषा)-भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर—चर्खेवालाँ, दिल्ली
३. सुधा-प्रकाशन, भारत-आश्रम, राजा-बाजार, लखनऊ
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना—४
५. गंगा-गृह, फूल-निवास, अजमेर
६. वेस्टर्न बुकडिपो, रेजिडेंसी रोड, नागपुर—१
७. जवाहर-ज्योति, वंशीधर-कोठी, इलाहाबाद
८. सावित्री-साहित्य-सदन, मच्छोदरी-पार्क, वाराणसी

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें भारत-भर के सब प्रधान पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ मिलती हैं। जिनके यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम वहाँ भी सुलभ करेंगे।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

प्रेमोपहार

समर्पण

प्रिय शुक्लो के स्नेह-सिंचित अबोध आत्मविसर्जन को,
जो मेरे जीवन की क्रियात्मक सामाजिकता
की अप्रत्यक्ष पृष्ठ-भूमि है।

—नरेंद्र

वक्तव्य

सन् १९१३ में हमें, जब हम १०वीं कक्षा में पढ़ते थे, भार्गव-पत्रिका के संपादन का भार वहन करना पड़ा। उसके पहले वह उर्दू में निकलती थी, अब आधा भाग हिंदी में भी निकलने लगा।

सन् १९१७ में हमने गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय स्थापित किया, और उसके द्वारा सैकड़ों प्रसिद्ध पुस्तकों का संपादन-प्रकाशन करने में समर्थ हो सके, और वे भारत-भर में घर-घर फैल गईं।

माधुरी हमने सन् १९२२ में निकाली, और सुधा सन् १९२७ में। इन्हें हिंदी-संसार ने ख़ूब अपनाया।

इन चारो में ही हमें उस समय के सभी लब्धप्रतिष्ठ लेखकों और कृतविद्य कवियों का सहयोग मिला। प्रेमघनजी, मिश्रबंधु, आचार्य द्विवेदीजी, डॉक्टर मैथिलीशरण गुप्त, पं० श्रीधर पाठक, रत्नाकरजी, हरिऔधजी, पंतजी, प्रसादजी, आचार्य शुक्लजी आदि सैकड़ों कवि-कोविदों की सहायता हमें सर्वथा सुलभ थी। इसीलिये हमारे ये चारो उद्योग ख़ूब सफल हुए।

हमारी शिक्षा क्वींस-कॉलेज, जुबली-कॉलेज, कैनिंग-कॉलेज (लखनऊ) और म्योर सेंट्रल-कॉलेज (प्रयाग) में हुई। तब हिंदी मैट्रिक तक ही पढ़ाई जाती थी। किंतु अपनी माताजी श्रीमती राम-प्यारीदेवी और पत्नी श्रीगंगादेवी के प्रभाव से हमें हिंदी से सर्वाधिक स्नेह हुआ—उसमें हमें कक्षा में ९३ प्रतिशत तक नंबर मिलते थे, यद्यपि गणित और अँगरेज़ी भी हमारे परम प्रिय विषय थे—उनमें हमें क्रमशः शत प्रतिशत और ८६ प्रतिशत तक नंबर मिले। अँगरेज़ी में प्रांत में प्रथम आने के कारण हमें नेस्फ़ील्ड-स्कॉलरशिप मिला,

और कैनिंग-कॉलेज में एक बार भौतिक शास्त्र (Physics) में हमें शत प्रतिशत नंबर मिले थे।

कैनिंग-कॉलेज में पढ़ते समय हम साइंस लिए हुए थे, पर कविता करने का हमारा शौक़ उन्हीं दिनों, अपनी पत्नी के प्रभाव से, पल्लवित हुआ।

अतः कैनिंग-कॉलेज से, जहाँ हमने विशेष शिक्षा प्राप्त की, विशेष प्रेम होना हमारे लिये स्वाभाविक ही था। जब लखनऊ-विश्वविद्यालय ने कैनिंग-कॉलेज में बी० ए०-कक्षा में हिंदी प्रारंभ की, तो हमने पं० बदरीनाथजी भट्ट बी० ए० और पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० के नाम, पूछने पर, रजिस्ट्रार को बतलाए। इन दोनों सज्जनों में से भट्टजी की ही अर्ज़ी आई थी। अतः वह विश्वविद्यालय (कैनिंग-कॉलेज) के सर्वप्रथम अध्यापक चुन लिए गए। पं० कृष्णविहारी मिश्र हमारे साथ माधुरी में आ गए। अस्तु।

तब हमारा प्यारा लखनऊ उर्दू का गढ़ था। परंतु सन् १९२२ में उधर कैनिंग-कॉलेज में हिंदी की प्रथम बार पढ़ाई प्रारंभ हुई; इधर माधुरी और सुधा भी निकल गईं। अतः जो विद्यार्थी विश्वविद्यालय में हिंदी नहीं भी लिए थे, उनका भी ध्यान उसकी उन्नति की ओर आकर्षित हुआ—वे कवि-कुटीर में आने लगे।

कवि-कुटीर में जिन हिंदी-प्रेमी विद्यार्थियों का आगमन होता रहता था, उनमें से कई बाद में बहुत यशस्वी हुए। उनकी प्रथम रचनाएँ छापने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। पतन के लेखक श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा, विदा के लेखक श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव, खाँड़े की धार के लेखक श्रीयुत सुधींद्र वर्मा, पत्रकार-कला-मर्मज्ञ श्रीयुत पृथ्वीपालसिंह, प्रसिद्ध कहानीकार, 'नंदन-निकुंज' के लेखक श्रीयुत चंडीप्रसाद 'हृदयेश', और अरुणजी आदि छात्रों ने, हमारे अनुरोध पर, माधुरी, सुधा और गंगा-पुस्तकमाला में लिखा—हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाया।

भारती (भाषा) के प्रसिद्ध और विचारशील लेखक श्रीनरोत्तम-लाल गुप्त 'नरेंद्र' भी लखनऊ-विश्वविद्यालय के इन्हीं हिंदी-प्रेमी विद्यार्थियों में से हैं। हमारा उनका परिचय लगभग २० वर्ष से है। वह सुधा और गंगा-पुस्तकमाला-मंडल के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों में हैं। हमने उनकी जीवन-रेखाएँ, बाहर-भीतर, विचार-बिंदु आदि पुस्तकें प्रकाशित भी की हैं, जो साहित्य-संसार द्वारा समादृत हुई हैं। वे हाथों हाथ बिकी हैं।

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने सामाजिक, राजनीतिक आदि विविध विषयों पर प्रगतिशील दृष्टि-कोण से विचार किया है। इन विचारों को नवयुवकों और नवयुवतियों को अपनाना है, और वयो-वृद्ध, उदार-हृदय सज्जनों को इन विषयों पर पुनः, वर्तमान युग दृष्टि में रख, विचार करना चाहिए।

भाषा इसकी मुहाविरेदार और प्रतिपादित विषयों के अनुरूप है। यह हिंदी की लखनऊ-शैली में लिखी गई है। यह नहीं मालूम पड़ता, यह किसी बरसाना(ज़िला मथुरा)-निवासी सज्जन की लिखी पुस्तक है। हमने भी उसे यथासंभव सँवार दिया है।

सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से ही ये निबंध महत्त्व-पूर्ण नहीं, विचारों की दृष्टि से भी ये उच्च कोटि के हैं।

आशा है, हमारे मित्र श्रीनरोत्तमलालजी की और पुस्तकों की तरह यह पुस्तक भी प्रेमी पाठकों को पसंद पड़ेगी।

कवि-कुटीर
३ । १२ । ५७

दुलारेलाल

अपनी बात

नवीन लेखकों से दो-दो बातें—साहित्यकार का काम सृजन करना है। सृजन अथवा निर्माण सरल कार्य नहीं। उसकी प्रतिभा और शक्ति कुछ ही व्यक्तियों को प्राप्त हो पाती है। परंतु यह सत्य है, सतत अभ्यास और श्रम से वह कठिन भी नहीं है। साहित्यकार को अपना जीवन कृति के तुल्य बनाना पड़ता है। यदि उसकी आत्मा उसकी कृति में प्रतिबिंबित नहीं होती, तो वह कर्ता तथा समाज को सुख नहीं दे सकती। उसे प्रथम ज्ञान-विज्ञान का संचय कर समझना पड़ता है; फिर उसे आत्मसात् कर परिष्कृत रूप से समाज को देना होता है।

शिक्षा के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति का किसी-न-किसी विषय से विशेष अनुराग हो जाता है। वह उसे अपना समझ उसमें लीन हो जाता है। उस विषय के ग्रंथों का अवलोकन करता है। उनकी विचार-धाराओं पर विचार-विमर्श कर उन्हें व्यवस्थित रूप में समाज को प्रदान करता है। इस तरह एक विद्यार्थी शिक्षक और साहित्यकार बन जाता है।

परंतु इस लेख का उद्देश्य नवीन लेखकों से संबंधित है। इसका साहित्य के बजाय पत्रकार-कला से अधिक प्रयोजन है। प्रायः सभी पत्रों का समय और आधुनिक स्थिति से अधिक संबंध होता है, भले ही लेखों के विषय एवं समस्याएँ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक ही हों। यद्यपि यह सत्य है, गौण रूप से प्रत्येक पत्र में शाश्वत साहित्य के लिये स्थान होता है। दैनिक, साप्ताहिक,

पाक्षिक, मासिक और त्रैमासिकों का क्रम से स्थायी ज्ञान से अधिक संबंध होता है।

प्रत्येक पत्र की एक विशेष नीति, विचार तथा उद्देश्य होता है। उसी ध्येय के लिये वह अपनी शक्ति का उपयोग करता है। वे सभी बातें, जो उसके उद्देश्य में बाधक होती हैं, उसमें स्थान नहीं पातीं। लेखों के चयन में इसका ध्यान रक्खा जाता है। लेख भेजने से पूर्व आपको पत्र के लेख और स्तंभ देख यह सोच लेना चाहिए, क्या आपका लेख पत्र के लिये उपयोगी होगा ?

नवीन लेखकों को नाम की अभिलाषा से—अपरिपक्व अवस्था में प्रसिद्धि-प्रकाशन से दूर रहना चाहिए। जब तक उन्हें अपनी योग्यता पर विश्वास न हो, वे इस क्षेत्र में न उतरें। लेखन से पूर्व अध्ययन की विशेष आवश्यकता होती है। अपना ज्ञान व्यवस्थित तथा रुचि-पूर्ण निबंध से प्रस्तुत करना भी एक कला है। आप अपने जीवन में अभ्यास और परिश्रम का महत्त्व न भूलें। अपनी कठिनाइयों में गुरुओं तथा साहित्यिक मित्रों से सहायता लें। आपको सफलता अवश्य मिलेगी।

एक आंग्ल लेखक ने कहा है—प्रतिभा में ९९ प्रतिशत परिश्रम ही होता है। वस्तुतः संस्कारों तथा जन्म से प्राप्त प्रतिभा हमारे पूर्व-कृत कर्मों का ही परिणाम होती है। अभ्यास से प्राप्त निपुणता ही प्रतिभा बन जाती है। आपमें सच्ची लगन, दृढ़ भक्ति और उत्साह होना चाहिए। यदि ये गुण आपमें होंगे, तो मार्गों के सभी कष्ट पार कर आप अवश्य ही मंज़िल पर पहुँच सकेंगे।

प्राचीन भारत में गुरु लोग शिष्यों की भक्ति परख लेने के बाद ही उन्हें विद्या-दान करते थे; क्योंकि वे समझते थे, सफलता का रहस्य अनन्य भक्ति और अभ्यास पर आश्रित है। अपना अमूल्य समय व्यर्थ न जाने दें। 'राबिंसन क्रूसो' के लेखक

ओडेनियल महोदय अनेक संस्थाओं के सदस्य, प्रमुख कार्यकर्ता और प्रधान थे, किंतु शेष समय में वह साहित्य-साधना करते थे। 'राबिंसन क्रूसो' अँगरेज़ी-साहित्य की सुंदर तथा सर्वप्रिय कृति है। हमारे देश के प्रसिद्ध गणितज्ञ श्रीरामानुजम् की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। परंतु उनका गणित के प्रति प्रेम अगाध था। उन्होंने स्कूल में ही कॉलेज की किताबों का अध्ययन कर लिया था। कुछ समय निर्धनता में साधना करने के बाद उनका भाग्य फिरा। वह रॉयल सोसाइटी के सदस्य चुने गए। उनका विश्व में सम्मान हुआ। एक ब्रिटिश गणितज्ञ ने उनके बारे में कहा है—"वह गणित की मूर्ति थे। हमें उनके विशद कार्य समझने में भी सौ वर्ष लग जायँगे।" रेडियम तथा एक्स-रे का आविष्कार करनेवाली श्रीमती क्यूरी का जीवन भी अभ्यास और दृढ़ भक्ति की महत्ता बताता है।

प्रत्येक लेखक को अपने विषय का प्रामाणिक तथा विशद ज्ञान होना चाहिए। उसकी प्रगति और भविष्य समझना चाहिए। अनेक विषयों के उथले ज्ञान से एक विषय का गहरा ज्ञान अधिक उपयोगी होता है। आप उस विषय के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों के लिखे लेख पढ़ें, और फिर अपनी योग्यता परखें। यदि आपको अपनी कृति से संतोष और अपनी योग्यता पर विश्वास हो, तो खुले हृदय से प्रकाशन-क्षेत्र में पदार्पण करें। जनता आपका स्वागत करेगी।

अब हम लेखन के विषय में कुछ बातें लिखेंगे, जो नवीन लेखकों के लिये उपयोगी होंगी। लिखने से पूर्व विषयों के तथ्यों और विचारों को सम्यक्तया एकत्र कर लेना चाहिए। एक अलग पृष्ठ पर रचना की बाहरी रूप-रेखा लिख लेनी चाहिए। इससे लेखन में कोई बात शेष न रहेगी, तथा क्रम में व्यवस्था रहेगी। पुनरुक्ति भी न होगी।

लेख का प्रारंभ पृष्ठ के निचले भाग से करना चाहिए। ऊपरी

भाग संपादकीय कार्यों के लिये छोड़ दें। पृष्ठ के बाईं तरफ़ कम-से-कम एक इंच का हाशिया अवश्य रक्खें। हमेशा रेखायुक्त काग़ज़ पर ही लिखें, अन्यथा पंक्तियाँ ऊपर-नीचे चली जाती हैं। लेखन की सुंदरता तथा व्यवस्था नष्ट होने से पढ़ने में अरुचि होती है। पता लेख के अंत या प्रारंभ में लिख सकते हैं, किंतु लेख के साथ भेजी चिट्ठी अलग पृष्ठ पर ही हो। लेख भेजने से पूर्व एक प्रति अपने पास रख लेनी चाहिए।

लेख सुंदर और स्पष्ट हो। अक्षर छोटे या अधिक पतले न हों। शब्द अलग-अलग लिखे हों। ऊपरी रेखा (मस्तक) देना न भूलें, क्योंकि इससे म और भ आदि अक्षरों में भेद करना कठिन हो जाता है। लेख में विराम-चिह्नों का समुचित प्रयोग हो। द, इ, प, य, व, ब आदि अक्षरों पर विशेष ध्यान दें।

भाषा मधुर एवं सुंदर हो। उसमें कटुता या प्रवाह का भंग न हो। बड़े वाक्यों की जगह छोटे वाक्यों का प्रयोग करें। शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक और अर्थानुकूल हो। पुनरुक्ति, दुरूहता, अस्पष्टता, विरुद्धता आदि दोष न हों। संख्याएँ और तथ्य प्रामाणिक रूप से उद्धृत हों। विषय के प्रतिपादन में अनावश्यक संक्षेप और विस्तार न हो।

लेख की भूमिका लगभग आठवें हिस्से के बराबर होती है। लेख के मध्य भाग में विषय का क्रमिक विकास होता है, और परिणाम से समाप्ति होती है। प्रत्येक पैराग्राफ़ में एक विचार होता है। प्रत्येक पैराग्राफ़ का द्वितीय पैराग्राफ़ से क्रमिक तथा व्यवस्थित संबंध होना चाहिए। लेख का आकार साप्ताहिक का एक पृष्ठ हो। जनता बड़े लेखों के बजाय छोटे लेख अधिक पसंद करती है। आपके लेख सरस तथा उपयोगी हों। वे रुचि के परिष्कारक तथा हितकारी हों। तभी आप लेखनी द्वारा समाज-कल्याण कर सकेंगे।

अंत में बंगाल के लंबे प्रवासी हिंदी-लेखकों की सुविधा के लिये कुछ बातें प्रस्तुत करता हूँ। वे लिंग (स्त्रीलिंग और पुंलिंग) के प्रयोग में बहुधा भूल कर जाते हैं। परिणामतः क्रिया-विशेषण और संबंधकारक के प्रयोग में भी व्याकरण की त्रुटि हो जाती है। वे वचन (एकवचन और बहुवचन) का ध्यान नहीं रखते, जिससे क्रिया का प्रयोग भी अशुद्ध हो जाता है। वे कर्ता के साथ 'ने' रखना भूल जाते हैं, जिसके कारण कर्म के प्रयोग में भी भूल कर जाते हैं। आशा है, ये निर्देश नवीन लेखकों के लिये उपयोगी होंगे।

इस पुस्तक में संकलित अपने इन लेखों के विषय में एक बात यहीं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। ये सभी लेख मैंने अखिल भारत-वर्षीय मारवाड़ी-सम्मेलन के साप्ताहिक मुखपत्र 'समाज-सेवक' के संपादक के नाते, संपादकीय के रूप में, लिखे थे, अतः इनमें समय, स्थान और परिस्थितियों की छाप स्पष्ट परिलक्षित होगी। परंतु ये इन्हीं से बँधकर सीमित नहीं—इनका स्थायित्व इनसे परे है। इसी भाव से प्रेरित होकर ही मैं इन्हें हिंदी-जगत् के सम्मुख रख रहा हूँ। आशा है, पाठकगण इनके साथ समुचित, न्याय-संगत सहानुभूति दिखाते इनसे यथेष्ट लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे। अंत में मैं अपने सुपुत्र चि० प्रकाशचंद्र गुप्त तथा प्रिय शकुंतला गुप्ता को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में काफ़ी सहायता दी है। सुश्री शकुंतला गुप्ता तो विशेष रूप से इसलिये भी मेरे धन्यवाद की पात्री ठहरती हैं कि वह तो मेरी सामाजिक चेतना के आदि स्रोत की भाँति साबित हुई हैं, तथा उनसे मुझे नारी की प्रगतिशीलता के प्रतीक के रूप में निरंतर दिशा-संकेत और प्रेरणा मिली है, जो इन लेखों में व्यक्त मेरे विचारों की आधार-भूमि है।

कोसी कलाँ
स्वतंत्रता-दिवस
१५ । ८ । ५६

—नरेंद्र

सूची

पृष्ठ

समाज

राजनीति

परिशिष्ट

समाज

एक

जीवन का व्यावहारिक दर्शन

भूख लगने पर यह तो स्पष्ट है कि हम रोटी, मिठाई, फल और स्वादिष्ट खाद्य सामग्रियाँ चाहते हैं, परंतु पेट की भूख बुझ जाने के बाद—पेट भर जाने के बाद—हम क्या चाहते हैं, इसका एक निर्णय आज तक नहीं हो पाया। सो जाइए, ऑफिस चले जाइए, पढ़िए, लिखिए, और अगर आपके विद्वान् मित्र हैं, सुंदर पत्नी है, तो उनसे जी बहलाइए। अगर अकेले हैं, तो घूमने निकल जाइए, और ख़ूब थककर अंत में सो जाइए—बस, सब झंझट से छुटकारा मिल जायगा। परंतु जैसे यह सब तो हमें करना ही पड़ता है। और, हम कुछ और चाहते हैं, पर नहीं जानते। मन में असंतोष, अशांति बनी रहती है। पैसा मिलने पर कुछ कर गुजरने की मरजी होती है। सुखी परिवार, भाई-बंधु, सब मिलने पर भी हम और कुछ चाहते

हैं। इसी से अधिकाधिक प्राप्ति पर होड़ और अधिक बढ़ती जाती है, और बुढ़ापा आने पर, शैथिल्य बढ़ने पर हम हार मान हथियार डाल देते हैं। उस रहस्यमय की अपरंपार माया का उचित, सही ज्ञान होने लगता है। लेकिन मृत्यु तक भी कुछ कमी, कुछ कसक बनी रहती है, और एक व्यथा तथा असंतोष की गहरी वेदना के निःश्वास त्यागता यह शरीर प्राणों से मुक्ति पा लेता है।

सृष्टि के प्रारंभ से यह चाह चली आती है। यह भूख नहीं बुझती। हम प्राण-पण से समस्त भौतिक पदार्थ प्राप्त कर यह भूख मिटाते हैं। इसी से आज तक बड़े-बड़े साम्राज्यों का निर्माण हुआ। असंख्य आत्माहुतियाँ दी गईं। मिस्र के प्रजा-तंत्र, भारत के गणतंत्र और रोम-साम्राज्य, इस्लामी साम्राज्य, मंगोलियन तथा अँगरेजी साम्राज्य का इसी कारण निर्माण हुआ। इसी कारण महाभारत से लेकर आधुनिक बड़े-बड़े भयंकर महायुद्धों का निर्माण हुआ, और आज भी चारों ओर उसी की चिनगारियाँ फूट रही हैं। ये ही ऐतिहासिक संघर्ष दृष्टि में रखकर मानव के असंतोष, दुःख, अशांति का मूल कारण अर्थ और यौन संबंध प्रसिद्ध विद्वान् मार्क्स और फ्रायड ने बताया। दुनिया कुछ भौतिक दिखाई देनेवाला उपकरण चाहती थी, जिसे पकड़कर--जैसे भी हो, उसे प्राप्त कर—अपना संतोष, शांति, आनंद और ऐसा सुख चाहती थी, जिसके लिये उसने इतनी साधना की, और हजारों पीढ़ियों का हवन कर यहाँ तक पहुँची ॥

परंतु इस दूसरी चाह की प्राप्ति इस संसार में कहाँ है ? अगर मनुष्य धन में, ऐश्वर्य में, मौज में है, तो समृद्ध सम्राट् भी क्यों असंतोष के, दुःख के, पीड़ा और जलन के शिकार रहे हैं ? इसी से इन भौतिक साधन-संघर्षों के साथ-ही-साथ एक अज्ञात को पाने के हमारे प्रयत्न निरंतर गतिशील रहे। वह क्या है ? इसे वेदों, जेंदावस्ता, बाइबिल, क़ुरान और अहिंसा, सत्य आदि के प्रचारकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से कहा—सूर्य की प्रचंड रश्मियों में, नदी के कल-कल नाद, बादलों की गर्जन और बिजली की चकाचौंध में, रात्रि के अंधकार और चंद्र की ज्योत्स्ना में उस अज्ञात की खोज प्रारंभ हुई, और मानव-स्वभाव तथा कार्यों में उसे निहारा गया। उसी के लिये नरक और स्वर्ग, पाप और पुण्य, सत्य और असत्य तथा प्रकाश और अंधकार की सृष्टि हुई। समर्थ सम्राटों ने इसी के लिये यज्ञ किए, राज-सिंहासनों को तिलांजलि दे वन-वन की राख छानी। कठोर तपस्या से अपने शरीर सुखाए, और महत् ज्ञान की सृष्टि की। पर वह ? वह अज्ञात, रहस्यमय—न-जाने क्या—अब तक प्राप्त न हो सका। हमने क्या नहीं किया, पर हमारे हृदयों में असंतोष की ज्वालाएँ जलती रहीं, और उनकी तृप्ति स्वप्न में भी संभव न हो सकी। दार्शनिकों का महान् चिंतन उस अज्ञात का स्पर्श न कर सका, और वे केवल इस उक्ति को आधार मान रह गए कि "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" अर्थात् वह उसे बनाकर उसी में प्रविष्ट हो गया। उसकी सत्ता वे न समझ सके, अतः अपना ज्ञान अनुभव

तक ही सीमित रहने दिया। कदाचित् यहाँ यह उदाहरण इस संदेह का निराकरण कर सके।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने जब शास्त्रार्थ में सभी उपस्थित विद्वानों को परास्त कर दिया, तो गार्गी पंडितों को संबोधित करती बोली—"मैं दो प्रश्न याज्ञवल्क्य से और करती हूँ, यदि उन्होंने मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दिया, तो आप लोग समझ लेना, अब हम लोगों में से कोई उनसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता।" ऐसा कह गार्गी ने प्रश्न करना प्रारंभ कर दिया। उत्तर देते-देते महर्षि थक गए, परंतु गार्गी का प्रश्न बढ़ता ही जाता था। अंततोगत्वा याज्ञवल्क्य को कहना पड़ा—"हे गार्गि! अज्ञात, अक्षुण्ण, अनंत, अनादि ब्रह्म विवाद से परे है, केवल अनुभव और चिंतन द्वारा ही बोधगम्य हो सकता है, अन्यथा किसी भी प्रकार नहीं।" गार्गी याज्ञवल्क्य का ऐसा वचन सुन चुप हो गई, और गाएँ महर्षि को शास्त्रार्थ के विजयोपलक्ष्य में प्राप्त हुईं। सोचने की बात है, जब हमारे तत्त्ववेत्ताओं और वेदों तक ने "नेति-नेति" किया, तो और की बात ही क्या?

हाँ, तो मेरे का कहने तात्पर्य यह कि मानव को वास्तविक आनंद (सुख) कहाँ प्राप्त हो सकता है। यदि "सन्तोषं परमं सुखम्" वाली उक्ति लेकर संतोष में ही सुख देखा जाय, तो वह भी हमारे दैनिक जीवन में ठीक-ठीक नहीं चरितार्थ होता। कारण, आजकल हमारी मानसिक व्यग्रता बढ़ गई है। दायरा जितना संकीर्ण होगा, उतनी ही

सरलता से हम उसे परिक्रमा द्वारा पूरा कर सकते हैं, और जितना बड़ा होता जायगा, उतना ही हमें परिश्रम करना पड़ेगा, और हम शायद उसके मार्ग का पूरा-पूरा अंदाज़ा भी नहीं लगा सकेंगे। प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा जीवन-उपभोग्य भोगों का अवलोकन कर बढ़ती ही जाती है, रोकने का सारा प्रयास विफल सिद्ध होता है। भोजन पा लेने के पश्चात् किस वस्तु से किसकी तृप्ति होगी, यह विषय आज तक मानव-समाज के लिये अज्ञात ही है। सुंदर पत्नी, धन-दौलत, मित्र, बंधु, पिता, माता इत्यादि सभी का सुख से संबंध है। आनंद के इन नश्वर पात्रों की क्रीड़ा स्वामित्व की अपेक्षा प्रतीक को बहुत दूर उठा ले जाती है, और सत्य के केंद्र-बिंदु से च्युत कर नाटक को ही समाप्ति दे देती है। तृष्णा, लालसा, भ्रांति, तृप्ति वस्तुतः स्वप्न, मनोविकार-मात्र हैं, इनका कोई अनादि अस्तित्व नहीं। मनुष्य के जीवन-संग्राम में बाधक होने के अतिरिक्त ये और कोई काम सफलता के नहीं करते। अतः उक्त विकारों के आधार पर यदि हम वास्तविक सुख-तृप्ति की कल्पना करते हैं, तो केवल अपनी महान् मूर्खता साबित करते हैं।

दो

समाज-सुधार की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि

सर्वप्रथम हमें यह समझ लेना चाहिए कि समाज-सुधार का क्या अभिप्राय है ? हम उसे स्पष्ट रूप में इस प्रकार कह सकते हैं कि समाज के दोष दूर कर उसे उच्च बनाना ह। उच्चता और नीचता स्थिति के नाम हैं, और स्थिति सर्वदा सापेक्षिक होती है। हम किसी वस्तु की स्थिति तब तक नहीं जान सकते, जब तक उसकी तुलना न करें। कक्षा के एकमात्र विद्यार्थी को प्रथम, मध्यम और अंतिम, तीनों कह सकते हैं। तुलना के लिये यह आवश्यक नहीं कि समानधर्मी से ही तुलना की जाय। हम सिद्धांतों से भी तुलना कर सकते हैं।

समाज की स्थिति जानने के लिये उसकी तुलना जरूरी है। हम दूसरे समाजों से उसकी तुलना कर सकते हैं। लाभों और हानियों को देख उसकी उच्चता और हीनता का ज्ञान प्राप्त

कर सकते हैं। यदि हम उसकी दूसरे समाजों से तुलना न करें, तो अपने सिद्धांतों और विचारों की कसौटी पर उसे परख सकते हैं। परंतु इस द्वितीय प्रकार की तुलना से पूर्व हमें अपने विचारों और सिद्धांतों की सत्यता एवं प्रामाणिकता पर विश्वास होना चाहिए।

हम अपने समाज की व्यवस्था के लिये कुछ विचारों का आश्रय लेते हैं। प्रायः वे विचार हमारे पूर्वजों द्वारा अनुभूत और प्रतिपादित होते हैं। उनके लिखित और अलिखित विचारों के आधार पर हम चलने का प्रयत्न करते हैं। किंतु हमने उनकी सत्यता की परख के लिये श्रद्धा, भक्ति और अंधविश्वास से आवृत होने के कारण कभी कष्ट नहीं किया है। साथ ही यह भी सत्य है, प्रत्येक कर्म युग-धर्म से परिवर्तित होता रहता है, यद्यपि मूल भावना सदैव एक रहती है।

पूर्वजों के विधान मानने से पूर्व हमें उनकी भावना समझनी चाहिए। सभी विधान काल के साथ न रहने पर निष्प्राण रूढ़ियाँ बन जाते हैं। उन विधानों की भावनाओं के अनुसार हम संशोधन कर सकते हैं। इस शुद्धि के बिना हमारे जीवन की वही दशा होती है, जो गति-हीन या अवरुद्ध जल की। रुद्ध जल के समान उन प्राचीन विधानों में प्राण नहीं रहता। इसलिये उनके सेवन से हम सामाजिक आरोग्य नहीं प्राप्त कर सकते। उन विधानों के मूल भूत विचारों का क्या आधार है, यह आपने शायद न सोचा हो। परंतु यदि आप वह मूल

भावना जान जायँगे, तो आपको भी वह दृष्टिकोण प्राप्त हो जायगा, जिससे विधानों का निर्माण होता है। इस नवीन चिंतन से आप समाज की प्रथाओं की भावनाओं को समझ सकेंगे। उन्हें कसौटी पर रख परख सकेंगे। उपयोगिता और लाभ देख अपना कल्याण कर सकेंगे।

मनुष्य आदि काल से संसार तथा अपने को समझने का प्रयत्न करता आया है। यही अनुसंधान की भावना उसे विकास और प्रगति प्रदान करती है। वह कुछ तथ्य बार-बार देखता है। उनमें समता का सूत्र पहचान उसे नियम की संज्ञा देता है। यदि उसे यह दिखाई देता है कि अमुक पदार्थ का अमुक गुण से शाश्वत संबंध है, तो वह उस गुण को उस पदार्थ का स्वभाव कहने लग जाता है। स्वभाव के ज्ञान से वह उससे संबंधित अनेक परिणामों की कल्पना और अनुमान करता है। इस तरह उसकी क्रियात्मिका या सर्जना बुद्धि का विकास होता है। इस प्रकार मनुष्य अपने परिश्रम से अन्य पदार्थों के गुणों का स्वाभाविक ज्ञान प्राप्त कर रेल, जहाज आदि के निर्माण में समर्थ हुआ है। रेल-जहाज भौतिक क्षेत्र के उदाहरण हैं, परंतु यह बात अन्य क्षेत्रों पर भी लागू होती है।

हमारे समाज का निर्माण व्यक्तियों से होता है। समाज समष्टि है, और व्यक्ति उसकी एक इकाई। जिस प्रकार मिश्रण में मूल तत्त्वों के गुण विद्यमान होते हैं, उसी प्रकार समाज में व्यक्तियों के गुण अवश्य होते हैं। यद्यपि यह सत्य है, मिश्रण

की व्यवस्था से कुछ भेद अवश्य हो जाता है, परंतु उसका संबंध परिस्थिति से है, न कि मूल भावना से। इसलिये उस भेद का स्थान अतीव गौण है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है, यदि हम व्यक्ति की भावनाएँ जान लें, तो समाज की भावनाएँ अनायास ही जान लेंगे, क्योंकि समाज का निर्माण व्यक्तियों से होता है। इसलिये समाज के विधान ही व्यक्ति की आवश्यकताओं और भावनाओं का पूर्ण करते हैं। साथ ही समाज इस बात का विशेष ध्यान रखता है कि एक व्यक्ति के हित से दूसरे का अहित तो नहीं होता। व्यक्ति के सुखों की रक्षा करते समाज के सुखों की व्यवस्था करना ही समाज के विधानों का उद्देश्य होता है। जो विधान उपर्युक्त कसौटी पर पूरा नहीं उतरता, वह कुप्रथा और रूढ़ि बन जाता है। उन विधानों का अनुयायी समाज पतित हो जाता है।

अब हमें यह जानना है कि व्यक्ति का स्वभाव क्या है ? हमें जन्म से ही कुछ भावनाएँ मिली होती हैं, जो हमारे जीवन की रक्षा तथा विकास के लिये उपयोगी होती हैं। कुछ भावनाएँ अत्यंत स्पष्ट होती हैं, और कुछ अस्पष्ट। उन्हीं से प्रभावित हो हम जाने या अनजाने सभी कार्य करते हैं। परंतु यदि उन भावनाओं की अभिव्यक्ति का स्वरूप समाज के अन्य व्यक्तियों के हितों में बाधक होता है, तो वह समाज की दृष्टि में खटक जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने आत्मरक्षा, शक्ति-प्राप्ति और काम को मुख्यतः मूल भावना कहा है। एक ने एक को प्रधानता दी, तो दूसरे ने दूसरी को। परंतु यह सत्य है, सभी भावनाओं का हमारे जीवन में अपना-अपना स्थान है। मनुष्य उनकी पूर्ति करता है, परंतु उनकी पूर्ति समाज के अन्य व्यक्तियों के लिये अहितकर नहीं होनी चाहिए।

शक्ति-प्राप्ति का ही उदाहरण लीजिए। मनुष्य उक्त भावना की पूर्ति के लिये अनेक कर्म करता है। कोई बलवान् बन सम्मान चाहता है, तो कोई धनवान् या विद्वान् होने में अपनी महत्ता समझता है। तीनों व्यक्ति 'आगे बढ़ो' की भावना ले प्रयत्न करते हैं, परंतु उनके कर्म भिन्न-भिन्न होते हैं। अपने क्षेत्र में उच्च स्थिति प्राप्त करने से उनकी शक्ति-प्राप्ति की भावना पूर्ण हो जाती है, और वे अपने को सुखी समझते हैं। परंतु कभी-कभी यह भी होता है कि मनुष्य अपनी दौड़ में दूसरों को धक्का देने लगता है। उससे दूसरों को असुविधा होती है। पहलवान अन्याय से दूसरे के अंग तोड़ देता है, धनवान् दूसरों का धन हड़पने लगता है, और विद्वान् दूसरे के अवगुण का प्रचार कर उसकी निंदा करने में अपनी महत्ता समझता है। इस तरह जब वे अनुचित उपायों से दूसरे व्यक्तियों को दुःख देते हैं, तो समाज के अपराधी बन जाते हैं। मनुष्य को अपनी प्रवृत्तियाँ पूर्ण करने का अधिकार है, परंतु उसे दूसरे के मार्ग का रोड़ा नहीं बनना चाहिए।

इसलिये समाज के विधानों की यही कसौटी है कि वे एक व्यक्ति का विकास करते अन्य व्यक्तियों के विकास में बाधक न हों। वे विधान भले ही प्राचीन हों या नवीन, उन्हें हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करना ही चाहिए। जो विधान उनकी पूर्ति नहीं करते, उन्हें हटा देना चाहिए। उनसे हमारे समाज का विनाश होता है। किसी वस्तु की प्राचीनता और नवीनता उसकी योग्यता का वास्तविक प्रमाण नहीं होती, प्रत्युत उपयोगिता की मापक होती है।

आजकल हमारे समाज में अनेको ऐसे विधान हैं, जो हमें पतन की ओर ले जा रहे हैं। विधान में प्रथा, रीति-रिवाज, व्यवहार, नियम और व्यवस्था आदि सभी का समावेश होता है, यह हमें न भूलना चाहिए। समाज के अनेक अंग हैं। उनमें अनेक सुधार हो सकते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, गृह-जीवन, त्योहार, रुचि और व्यसन आदि सभी क्षेत्रों में उन्नति और सुधार का अवसर है।

सुधार की आवश्यकता प्रत्येक क्षेत्र में होती है। जहाँ सुधार नहीं होता, वहाँ प्राचीनता, रूढ़िग्रस्तता आ जाती है। वह वस्तु समय और युग-धर्म के अनुकूल न होने से पिछड़ जाती है। उसके अनुयायी की प्रगति रुक जाती है, और अंत में दिए का तेल खत्म होने की तरह उसकी ज्योति बुझ जाती है। हमें अपना समाज जीवित रखने के लिये सुधार की आवश्यकता है। सुधार का उत्तरदायित्व समाज के व्यक्तियों और कर्णधारों पर समान रूप से है।

प्रत्येक व्यक्ति यदि यह प्रयत्न करे कि उसके कामों से समाज की क्षति न होगी, तो शीघ्र ही उन्नति हो जायगी। मनुष्य को अपने कर्तव्य और आचार की महत्ता तथा पवित्रता को न भूलना चाहिए। लड़ाई-झगड़े, गाली-गलौज, धोकेबाज़ी, मलीनता आदि अनेक प्रकार की अव्यवस्थाओं को हम व्यक्तिगत रूप से दूर कर सकते हैं। समाज के नेताओं को क़ानून तथा सामाजिक प्रभाव के प्रयोग से उन्नति में योग देना चाहिए। यदि सरकार चाहे, तो शिक्षा, प्रेस, सिनेमा तथा अन्य साधनों द्वारा यह शुभ काम कर सकती है। यदि सभी व्यक्ति अपना कर्तव्य समझते समाज-सुधार में सहयोग देंगे, तो समाज अवश्य ही उन्नति के शिखर पर पहुँच जायगा। उसमें प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा होगी, और प्रत्येक व्यक्ति को उस समाज का सदस्य होने पर अभिमान होगा।

तीन

वैवाहिक विषमताओं का सामाजिक दृष्टिकोण

विवाह जीवन की एक महत्त्व-पूर्ण समस्या है। विशेषतः भारत में इसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है, क्योंकि इसकी प्राचीन मर्यादाएँ, धर्म और संस्कृति किसी रूप में विवाहोच्छेद का पोषण नहीं करतीं। विवाह एक बार का निर्णय है, जिस पर हमें आजीवन चलना होता है। वह एक अद्भुत गाँठ है, जो खोली नहीं जा सकती। वह समाज-विज्ञान का एक समास (Compound) है, जिसे अनायास ही पृथक् नहीं कर सकते। वह एक बंधन है, जिसमें बँधकर हम उसे काट नहीं सकते।

इतने महत्त्व-पूर्ण तथा जटिल प्रश्न की हम उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे गृह-जीवन तथा भावी कला का भविष्य उसी पर आश्रित है। हमारे कुछ समय के निर्णय पर कितना अधिक उत्तरदायित्व है! भले ही हम उस उत्तरदायित्व को समझें या न

समझें, किंतु यदि हमसे भूल हुई, तो उसका दुष्परिणाम हमें भोगना ही पड़ेगा। उस समय हम अपने अविवेक पर पछ-ताएँगे, और हाथ मलते रह जायँगे। हमारे सभी प्रयत्न गृह-जीवन-दीप के बुझने पर तेल डालने के समान निरर्थक हो जायँगे।

प्रकृति में एक सृजन की भावना व्याप रही है। 'प्रकृति का कभी विनाश नहीं होता', यह विज्ञान का सत्य है, और जिसे हम विनाश समझते हैं, वह केवल परिवर्तन है। प्रत्येक चेतन प्राणी में जीवन की चाह होती है, और अंग-वृद्धि की भावना उसके साथ लगी रहती है। वनस्पतियों या पशुओं में हम उपर्युक्त तथ्य देखते हैं। वे बीजों और संतति द्वारा संसार में अपने उत्तरा-धिकारियों को छोड़ जाते हैं। यही मनुष्य का हाल है।

मनुष्य पशुओं से उच्च है, क्योंकि उसमें बुद्धि का विशेष स्थान है। यदि उसे बुद्धिमान् होने से उच्च मान लिया जाय, तो उसका उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। परंतु हम यह देखते हैं, बुद्धि की प्रतिमूर्ति मनुष्य अपने जीवन से असंतुष्ट है, और स्वाभाविकता के पुजारी पशु हमसे कहीं अधिक सुखी हैं। वे व्याधियों से मुक्त हैं, किंतु मनुष्य की देह उन्हीं से जर्जर है। उनमें उचित समय पर ही काम का उदय होता है, और वे स्वाभाविक विधि से अपना कृत्य संपादित करते हैं। परंतु 'विवाह-संस्कार' का आडंबर रचनेवाला मनुष्य काम का दास है। उसकी [illegible] की तरह अप्रामाणिक हो गई है।

वह विवाह का रहस्य समझ नहीं पाया। वह उसका मूल उद्देश्य भूल गया है। वह उद्देश्य से विहीन हो अपने कर्तव्य निभाने में असमर्थ है। यदि उपर्युक्त कथन सत्य नहीं है, तो क्या कारण है, मनुष्य को गृह-जीवन से असंतोष है ? वह उसे रेगिस्तान के समान नीरस क्यों समझता है ? उसकी प्यास क्यों नहीं बुझ पाती ? क्या इस असफलता का प्रतिकार संभव नहीं ? संभव है। परंतु हमें अपने विधानों तथा व्यवहार में सुधार करना अत्यंत आवश्यक है।

यदि हम यह मान लें, विवाह का उद्देश्य उच्च संतति का निर्माण है, तो यह आवश्यक है, पति-पत्नी का जीवन उच्च हो। संतानें शुभ संस्कार ग्रहण करें। पति-पत्नी का जीवन दोनो के सहयोग पर आश्रित है। एक गाड़ी के दो पहिए होते हैं, जिन्हें एक साथ चलना होता है। यदि उनमें कुछ भी विषमता या विरोध होगा, तो चाल धीमी पड़ जायगी, गाड़ी लड़खड़ाते हुए चलेगी, प्रगति में शिथिलता आ जायगी, और कभी-कभी गाड़ी रुक भी जायगी।

कहने का अभिप्राय यह कि उनके जीवन में विरोध न हो। उन्हें मेल से रहना चाहिए। दोनो को कष्टों में मिलकर उन्हें दूर करना चाहिए। परंतु यदि वे विरोधी गुणों के संघात होंगे, तो उनमें कलह ही होगा। इससे यह स्पष्ट है, अनमेल विवाह न होने चाहिए। अर्थात् विवाह के पूर्व वर-वधू में योग्य समताओं को देख लेना चाहिए। वे तीन प्रकार की हैं—शारीरिक, मान-

सिक और सामाजिक। अब हम क्रमशः एक-एक पर विचार करेंगे।

विवाह में वर-वधू की अवस्था का अनुपात २५-१६ है। इसकी आयुर्वेद ने पुष्टि की है। क्योंकि उससे पूर्व स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य का पूर्ण परिपाक नहीं हो पाता। किंतु उपर्युक्त सूत्र हमारे देश में उपेक्षित है। प्रायः छोटी अवस्था में ही विवाह हो जाते हैं। कहीं-कहीं अत्यधिक आयु में भी विवाह होते हैं। छोटी अवस्था में शारीरिक शक्ति विकसित नहीं होती, और बड़ी अवस्था में कामना का संयम करना कठिन होता है। इसलिये मध्य भाग ही ठीक है। क्योंकि पूर्वोक्त दोनो अवस्थाओं में दोष की संभावना रहती है।

कई वार दहेज की कुप्रथा से कन्याओं के विवाह रुक जाते हैं। धनी पुरुष अपने विलास के लिये वृद्धावस्था में कुमारियों से विवाह करते हैं। कुमारियाँ भी धन के प्रलोभन से उसे स्वीकार कर लेती हैं, किंतु वस्तुतः गृह-जीवन के सुख से वंचित हो जाती हैं। कभी-कभी समान अवस्था के पति-पत्नी भी पाए जाते हैं। परंतु इस प्रकार के अनुचित संबंधों से कल्याण नहीं होता। हमें आयु के दृष्टिकोण की उपेक्षा इसलिये नहीं करनी चाहिए, क्योंकि आयु के विकास के साथ विचारों या बुद्धि का विकास भी संबंधित है। यौवन में आशा फूटती है, परंतु अगली अवस्था में चिंतन की गंभीरता बढ़ती है। जवानी में सांसारिक विषयों के प्रति जो प्रेम होता है, वह बुढ़ापे में घटने लग जाता है।

इसलिये यदि वर-वधू की अवस्था में अधिक भेद होगा, तो उनके विचारों और भावनाओं में भी विषमता पाई जायगी। उनकी इच्छाएँ न मिलेंगी। इसलिये उनमें प्रेम तथा सहयोग न रहेगा। वे छोटी-छोटी बातों पर कलह करेंगे। इसके अतिरिक्त उनके स्वास्थ्य की उपेक्षा न करनी चाहिए। यदि उनमें गुप्त बीमारियाँ होंगी, तो उनकी संतानें भी व्याधि-ग्रस्त होंगी। संक्रामक रोगों से आक्रांत व्यक्तियों को विवाह से सर्वथा दूर रहना चाहिए। वे अपने पाप को सहयोगी व्यक्ति पर न मढ़ें।

दूसरी समता विचारों की है। यह अत्यधिक महत्त्व-पूर्ण है। मान लीजिए, दोनो के धार्मिक विचारों और मंतव्यों में मत-भेद है, तो उनके आचार-व्यवहार तथा त्योहार आदि मनाने में भी मत-भेद होगा। कल्पना कीजिए, एक को सादगी पसंद है, और दूसरे को विलास, तो वे अवश्य ही एक दूसरे से घृणा करेंगे। एक को चिढ़ कंजूसी से होगी, और दूसरे को फ़िज़ूलखर्ची से।

इसी विषमता के कारण महापुरुषों और कलाकारों का गृह-जीवन असुखी रहता है। उनका जीवन एक विषय के प्रति समग्र रूप से समर्पित होता है। उन्हें नारी का ध्यान नहीं रहता, इसलिये उनकी पत्नियाँ उनसे असंतुष्ट रहती हैं। संत टॉल्स्टॉय रूस के त्यागी, तपस्वी साहित्यकार थे। वह धन के उपासक न थे। दीनों और किसानों से मिलते रहते थे। उनके साथ सहज भाव से काम करने लगते और उनके दुःख दूर किया करते थे। परंतु उनकी पत्नी सांसारिक सुखों की उपासक थी।

इसलिये उनकी कभी न बनी। पत्नी के दुर्व्यवहारों से दुःखित हो वह उससे अलग हो गए। इसी तरह अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

विवाह से पूर्व माता-पिताओं को वर-वधू के स्वभावों तथा इच्छाओं की तुलना कर लेनी चाहिए। वर-वधू यदि स्वयं मिल सकें, तो शायद अच्छा ही हो। परदे के संकोचों को दूर कर समझदारी से गुण-परीक्षा करनी चाहिए, अन्यथा विरोधी भावनाओं के मिश्रण से अनर्थ ही होगा।

तीसरी समता सामाजिकता पर स्थित है। विवाह-संबंध में उसका भी ध्यान रखना जरूरी है। कम-से-कम वर-वधू की कुलीनता और संस्कारशीलता पर अवश्य विचार करना चाहिए। जीवन में यह देखा गया है कि शुभ संस्कार या कुलीनता अनेक दुष्कर्मों से बचा देती है। माता-पिता की ख्याति संतान पर अंकुश का काम करती है। इसी प्रकार आर्थिक स्थिति का भी वर-वधू के जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

यदि धनी की कन्या एक सामान्य स्थिति के युवक से ब्याह दी जाय, तो वह सदैव असंतुष्ट रहेगी। वह गृह-कर्म करने में संकोच अनुभव करेगी। खुले रूप में आवश्यकताएँ पूरी न होने से वह पति से द्रोह करेगी। इसके विपरीत पति की यही इच्छा होगी कि कन्या के घर से अर्थ-प्राप्ति हो। इस तरह उनका जीवन सुखी न रहेगा।

अब आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि अनमेल विवाह क्या

है, और किस तरह होते हैं ? दहेज, परदा, अर्थ-लोलुपता आदि कारणों से उनकी उत्पत्ति होती है। उनके दुष्परिणामों के फल-स्वरूप गृह-कलह और व्यभिचार हो रहे हैं। विवाह एक जंजाल और बंधन हो गया है। गृह-जीवन की तपते रेगिस्तान से उपमा दी जाती है, जिसमें पति-पत्नी अपनी प्यास बुझाने के लिये हरिणों की तरह इधर-उधर भटकते हैं, परंतु जल नहीं मिलता, वे प्यासे ही रह जाते हैं।

क्या हमारे ये ही विवाह हैं, जिनमें इतनी अशांति भरी है। क्या हमारे विवाहों का उद्देश्य यही है कि पति-पत्नी कलह का ही जीवन व्यतीत करते रहें ? यदि हमें अपना गृह-जीवन सुखी बनाना है, और आदर्श संतानें पैदा करना है, तो अनमेल विवाह रोकने होंगे। यही नहीं, परदा, दहेज आदि कुप्रथाएँ भी हटानी पड़ेंगी। धन-लोलुपता आदि स्वार्थ दूर कर हमें अपने कर्तव्य निभाने होंगे, तभी हमारे विवाह सच्चे अर्थों में सफल हो सकेंगे।

चार

सामाजिक सुधार में क़ानून की मदद

समाज में प्रचलित कुरूढ़ियाँ, कुसंस्कार और हानिकारक रीति-रिवाज दूर करने के लिये सदैव दोहरे प्रयत्न किए जाते हैं। इन दोहरे प्रयत्नों से ही सदियों से जड़ पकड़ी इन बुराइयों से समाज को मुक्त किया जा सकता है। यह दोहरा प्रयत्न जनता तथा सरकार, दोनो की ओर से होना चाहिए।

समय के साथ-साथ समाज में बहुत-सी ऐसी कुरीतियाँ और रूढ़ियाँ चल पड़ती हैं, जिन्हें आसानी से नहीं बदला जा सकता, बल्कि उन्हें बदलने के प्रयत्नों का संगठित विरोध तक होता है, और इन कुरीतियों के बहिष्कार के लिये सामाजिक सुधार चाहनेवाले लोगों को व्यक्तिगत या सामूहिक तौर पर काफ़ी संघर्ष करना पड़ता है। यही कारण है, आज समाज में परदा-विरोधी आंदोलन को सफल बनाने के लिये जितना प्रयत्न

किया जाता है, परिणाम में उतनी तीव्रता नहीं हो पाती । परंतु एक दिन इस सत्कार्य में पूर्ण सफलता मिलेगी, यह निश्चित है ; क्योंकि यह आंदोलन सामाजिक हित की भावना से है, और इसके लिये सत्याग्रह के साधन का प्रयोग केवल प्रचारात्मक दृष्टि से है ।

जहाँ जनता की सरकार होती है, वहाँ इस प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ दूर करने के लिये सरकार की ओर से भी प्रयत्न होता है, और सरकार का क़ानून बनानेवाला महत्त्व-पूर्ण अंग इनके ख़िलाफ़ क़ानून बनाता है । बाल-विवाह, शराब-ख़ोरी, छुआछूत आदि पर पाबंदी लगानेवाले क़ानून इसी कोटि में आते हैं । इस प्रकार के क़ानून बन जाने से इन बुराइयों को दूर करने के लिये चल रहे दूसरे प्रकार के सार्वजनिक प्रयासों को बल ही मिलता है ।

भारतीय संविधान में जब अस्पृश्यता-निवारण-संबंधी धारा स्वीकार की गई, तो "महात्मा गांधी की जय !" से परिपद्-भवन गूँज उठा । निश्चय ही यह महात्मा गांधी की जय थी, चाहे पार्थिव रूप में वह आज हमारे सामने भले ही न हों । राष्ट्र से अस्पृश्यता का पाप धो बहाने में जीवन-भर महात्मा गांधी ने गंगा की पवित्र धारा का काम किया, और हमें यह दिन नसीब हुआ कि आज भारत के सिर से यह कलंक दूर हो गया । अब आवश्यकता यह है कि हम अपने मन से अस्पृश्यता की मलिन भावना धो डालें, और अपने भाइयों को हृदय से

लगा बापू के चरण-चिह्नों पर चलें। वास्तव में संकुचित जातीयता, धार्मिक कट्टरता, स्त्री-जाति को निम्न समझना और प्रांतीयता आदि की संकीर्ण भावनाओं ने भी भारत को बहुत कमजोर बनाया है, और उसके कारण राष्ट्र को अनेक बार अनेक तरह के संकट सहने पड़े हैं। इसलिये धर्म और जातिगत रीति-रिवाज तथा संस्कार व्यक्ति या समुदाय-विशेष की मान्यता के रूप में ही स्वीकार किए जाने चाहिए। समाज की सर्वांगीण प्रगति के लिये यही अभीष्ट दृष्टिकोण है।

वास्तव में भारतीय संविधान द्वारा जो दो नवीन धाराएँ स्वीकार की गई हैं, उनका परिणाम भारतीय लोक-जीवन का स्तर ऊँचा उठाने में बहुत अधिक होगा। पहली धारा में कहा गया है, देश में प्रचलित किसी भी प्रकार की अस्पृश्यता उठा दी जायगी। अस्पृश्य होने के कारण किसी व्यक्ति पर किसी भी तरह की अयोग्यता का आरोप नहीं किया जा सकेगा। ऐसा करना भविष्य में ग़ैर-क़ानूनी माना जायगा। दूसरी धारा में कहा गया है, इस देश के किसी भी नागरिक के साथ, धर्म, जाति, वर्ण, जन्म-स्थान, उसका पुरुष या स्त्री होना आदि के कारण, किसी भी प्रकार का भेद-विभेद का व्यवहार नहीं किया जायगा। इस धारा में कहा गया है, उपर्युक्त कारणों से किसी भी नागरिक को किसी दूकान में प्रवेश करने, किसी सार्वजनिक भोजनालय में जाने अथवा सार्वजनिक मनोरंजन-गृहों का उपयोग करने में, एवं कुओं, तालाबों, स्नान-घाटों, सड़कों और उन सार्वजनिक

स्थानों का, जिन पर संपूर्ण अथवा अंशतः सरकारी निधि खर्च की जाती हो, अथवा जो सार्वजनिक उपयोग के लिये बनाए गए हों, उपयोग करने में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं की जा सकेगी। इस धारा में स्त्रियों और बच्चों के लिये सरकार द्वारा अलग प्रबंध करने की बात स्वीकृत की गई है। ये दोनो धाराएँ हमारे लोक-जीवन को व्यवस्थित और सुसंगठित करने में बहुत अधिक सहायक होंगी, ऐसा विश्वास किया जाता है।

इसलिये यह ठीक है कि समाज का नैतिक स्तर ऊँचा हो, उसका विवेक जाग्रत् हो, तथा वह अधिकाधिक त्याग का दृष्टि-कोण अपनाए। जन-मत इस प्रकार की बुराइयों और कुरूढ़ियों के विरुद्ध बने, तथा इस प्रकार उन बुराइयों का उन्मूलन हो—यह रास्ता ही सामाजिक सुधार का वास्तविक और स्थायी परि-णाम सामने ला सकनेवाला है। फिर भी यदि जनता की सरकार हो, और सरकारी मशीनरी अच्छी हो, तो ये बुराइयाँ दूर करने के लिये क़ानून की मदद लेना भी अच्छा ही होगा। आशा है, जनता ऐसे क़ानून का स्वागत करेगी, और इससे राष्ट्र का बल-संवर्धन होगा, तथा हमारी जनता की सरकार भी दहेज-प्रथा तथा परदा-प्रथा आदि बुराइयाँ दूर करने के लिये भविष्य में क़ानूनी क़दम उठाएगी, जिससे सामाजिक प्रगति हो सके।

पाँच

सामाजिक वर्ण-व्यवस्था की एक भावी समस्या

आजकल कुछ जातियों ने सामाजिक और सुसंगठित रूप से उन कार्यों का बहिष्कार करना शुरू कर दिया है, जिन्हें वे परंपरा से करती आ रही हैं, और वे काम देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इसका कारण यह है कि उन पेशों को हीन दृष्टि से देखा जाता है। उन पेशे-वालों से जो व्यवहार होता आ रहा है, उसके विरोध में क्रांति या आंदोलन की भावना जग रही है।

हमारे देश में हरिजनों की उपेक्षा है, उनका सामाजिक बहिष्कार है। यह क्यों ? केवल इसलिये कि वे जनता की दृष्टि में छोटे समझे जानेवाले कार्य करते हैं, और निर्धन हैं। परंतु जब हम उनकी उपेक्षा करते हैं, तो हम यह नहीं सोचते कि क्या हमारी आलोचना का दृष्टि-बिंदु सत्य है ?

भारतीय कर्मयोग के सिद्धांतों का बौद्धिक सम्मान करते हैं, परंतु स्वीकार नहीं करते। इसके अनुसार पुरुषार्थ की सफलता कर्तव्य-भावना पर स्थित है, न कि फल-प्राप्ति पर। कर्मयोग की दृष्टि से सभी कार्य समान हैं, अपने-अपने स्थानों पर सभी महत्त्व-पूर्ण हैं। जो व्यक्ति कर्तव्य-बुद्धि से अपने कार्य करते व्यक्ति और समाज की उन्नति करते हैं, वे ही उच्च हैं। इसलिये चमारों और कहारों आदि को अपने से छोटा न समझें। हरिजनों के कार्यों से हमें घृणा है, परंतु क्या हम यह बात पुष्ट कर सकते हैं कि घृणा एक गुण है ? कभी नहीं। वे लोग जो कार्य करते हैं, क्या उनका सामाजिक महत्त्व नहीं ? यदि मेहतर, कहार, चमार आदि अपने कार्य पूर्णतया छोड़ दें, तो क्या हमारे समाज में अव्यवस्था न मच जायगी ? इसी भय से अन्य स्वाधीन देशों में इनकी सामाजिक सेवा का महत्त्व ध्यान में रखते इन्हें उचित वेतन दिया जाता है।

प्राचीन समय में कर्म या श्रम के विभाजन से इन जातियों का निर्माण हुआ था, परंतु समय बीतने पर वे रूढ़िगत बन गईं। अर्थात् जाति या वर्ण-व्यवस्था का हेतु कर्म और श्रम छोड़ जन्म समझा जाने लगा। व्यक्तियों की स्वार्थपरता, अज्ञता और विवेक-शून्यता से इस भेद की पुष्टि होने लगी। शासक जातियों ने अपने स्वार्थ-साधन के लिये ये भेद और भी बढ़ाए, जिससे एकता के अभाव में स्वाधीनता के विचारों का उदय न हो। उपर्युक्त कारणों से हम घृणा तथा भेद के शिकार

हैं, और उन बंधुओं को पराया समझते हैं, जो हमारे समाज के महत्त्व-पूर्ण अंग हैं।

इन पेशों को छोटा समझ घृणा करना ठीक नहीं। चमार बनना बुरा नहीं, परंतु चमार हो खराब जूता बनाना बुरा है। इसलिये यह आवश्यक नहीं कि इन पेशों का परित्याग कर सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न कर दी जाय, प्रत्युत आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने स्वाभिमान की रक्षा करते प्रत्येक कार्य को सद्बुद्धि से करें। एक विचारक ने कहा है, संसार में न कोई बुरा है, न कोई अच्छा, बल्कि यह सब हमारे सोचने का भेद है। यद्यपि यह सत्य है, हरिजनों के कार्यों का भी सामाजिक महत्त्व है, और उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, तो भी उनका विरोध संयत होना चाहिए, जिससे हमारी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था खतरे में न पड़ जाय। इस समस्या को सुलझाने के लिये दोनो ओर के नेताओं को विचार-पूर्वक कार्य करना होगा।

छः

'उन गुलों का रंज है, जो अधखिले मुरझा गए !'

आज नारी-जाति का ह्रास तीव्र गति से हो रहा है। वह समाज के पिंजड़े की बंदिनी है। उसके अधिकार छीन लिए गए हैं। वह विश्व की सबसे कोमल तथा सरल नारी समाज के कठोरतम बंधनों में जकड़ी है। उसकी पराधीनता उसे इधर-से-उधर हिलने नहीं देती। वह क्या करे ? वह परवश है। इसमें पुरुष का दोष है। क्योंकि पुरुष ही समाज के विधानों का निर्माता है। विधवा-विवाह की विरोधिनी प्रथा का वही जन्मदाता है। किंतु उसके कठिन परिणामों को नारी-जाति को भुगतना पड़ता है। करता कौन है, और भरता कौन ! क्या यही मानव-समाज का न्याय है ?

प्रकृति ने पुरुष और स्त्री को सृष्टि-विकास के लिये स्वाभाविक प्रेरणा दी है। उसे रोकना या दबाना अप्राकृतिक है,

हानिकारक है। इसी भावना को काम का नाम दिया जाता है। स्त्री-पुरुष में इसका अनुपात ८-१ है। इसी की पूर्ति के लिये विवाह का विधान है। परंतु स्वार्थी पुरुष अपनी आवश्यकता ही देखता है। प्रेम-संबंधों में यह देखा गया है कि पुरुष नारी को असहाय अवस्था में छोड़ जाता है। वह नवजात संतान लेकर भटकती है। [वह समाज की आँखों में खटक जाती है, परंतु पुरुष पर किसी का ध्यान नहीं जाता। ऐसी अवस्था में कितनी ही नारियाँ आत्मघात कर चुकी हैं।

किंतु नारी पुरुष-सी स्वार्थिनी नहीं। उसने पुरुष के लिये अनेक त्याग किए। वह जौहर के नाम पर आग में कूदी। सेवा के निमित्त वह दासी बन गई। वह लता की जगह मानव-वृक्ष की छाया हो गई। परंतु पुरुषों ने अपनी सहयोगिनी पर ध्यान न दिया। वृक्ष से आश्रय न मिला, और लता सूख गई! क्या इससे वृक्ष की सुंदरता का घात नहीं हुआ? क्या इससे मानव का अपमान नहीं हुआ? क्या उसके जीवन का एक अंग कटने से उसे क्षति नहीं हुई? हुई है! हुई है!! भले ही मनुष्य आँखें मीच लें, और उसे न देखें। भले ही वह उतनी प्रत्यक्ष न हो, किंतु उसका प्रभाव गहरा है। उसकी उपेक्षा से मनुष्य क्रूर और कठोर बन गया है। मानव बिगड़ दानव हो गया है। उसके जीवन में आग है, पर बुझाने के लिये पानी नहीं।

काम की प्रवृत्ति का समाधान सहज वस्तु नहीं। कुछ साधु, महात्मा और तपस्वी ही उसका परिष्कार कर पाते हैं। परंतु

सामान्य व्यक्ति उस पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते। यदि उसे दबाया या छिपाया जाता है, तो वह दूसरे रास्ते से फूटना चाहती है। जो काम सीधे से नहीं होता, वह तिरछे से होने लगता है। वह बिगड़ी बीमारी या उलझी पहेली बन जाती है। जो बीमारी प्रथम ही भीषण हो, उसका प्रतिकार करना कितना कठिन है? जो पहेली स्वयं ही दुरूह हो, उसे उलझने पर सुलझाना कितना दुष्कर है? खैर, पुरुष ने सामाजिक विधानों में अपनी दिक्क़तों का समाधान रख दिया, और नारी पर ध्यान तक न दिया। पुरुष चाहें, तो एक के बजाय चार-पाँच विवाह कर लें, परंतु नारी एक ही तक सीमित रहे। यह कौन-सा विधान है? क्या पुरुष ने नारी की आवश्यकता सोचते इसे बनाया है? कदापि नहीं। तो इसे किस तरह न्याय कहा जाय? यह पुरुष की धींगा-मस्ती है—यह उसका सरासर अन्याय है। यह पुरुष के अविवेक का सूचक—स्वार्थ का प्रदर्शक है।

जब स्त्री विधवा हो जाती है, तो उसके भाग्य का सितारा अस्त हो जाता है। उसके शृंगार का शीशा टूट जाता है। उसकी आशाओं की दुनिया छिपने लगती और वह चिंताओं के अंधकार में डूब जाती है। उसे अपनी आवश्यकताओं के लिये दूसरों का मुहताज होना पड़ता है। वह विरह से आजीवन दुःख और आँसुओं के साम्राज्य में भटकने लगती है। फिर वह सीधी नारी भाग्य को कोस चुप हो जाती है। वह कभी पुनर्विवाह के लिये पुरुष पर लांछन नहीं लगाती। वह जैसे-तैसे आँखें

मूँद अपना जीवन बिता देता है। संसार उसके लिये शून्य हो जाता है।

किंतु 'बाल-विधवाओं' की स्थिति और भी दुःखद होती है। वृद्धावस्था में, जब इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, संसार के विषय-भोग नीरस दिखलाई देने लगते हैं, तो शायद समस्या उतनी कठिन नहीं होती, जितनी बाल-विधवाओं की। उनकी दशा उस प्यासे व्यक्ति-सी होती है, जिसे पानी का गिलास दे, दो घूँट पीने के बाद हो, छीन लिया जाय, और वह तरसता ही रह जाय। अथवा हम उस व्यक्ति से तुलना कर सकते हैं, जिसे कृष्ण निशा के गहन अंधकार में विजन वनों से गुजरते दीर्घ तथा भयंकर मार्ग तय करना हो। उनके हृदय में सदैव एक तृष्णा दबी रहती है, जिसकी पूर्ति की संभावना भी असंभव दिखलाई देती है।

वह भावना उसके हृदय में चक्कर काटने लगती है। उसे तीव्र उत्सुकता से बार-बार दुहराने पर वह उसके अव्यक्त मन में बस जाती है। सामाजिक स्थितियाँ और चेतन मन उसकी इच्छा में बाधक होता है, और इसके विपरीत अव्यक्त मन उसकी पुष्टि कर रहा होता है। इस तरह उसके मन में एक संघर्ष या अंतर्द्वंद्व होने लगता है। उसके आचरण और भावना में विषमता आ जाती है। परंतु धीरे-धीरे अव्यक्त मन की विजय होती है। वह सामाजिक बंधन तथा विषय तोड़ प्रस्फुरित होने लगता है। सरलता विषमता बन जाती है। प्रतिकार कैसे हो?

अब वही विधवा वेश्या बन जाती है, भले ही वह हाट की संपत्ति न हो। जनता की दृष्टि में वही नारी 'सतीत्व' खो 'पतित' हो जाती है। वही कुल की देवी 'कुल-कलंकिनी' कहलाने लग जाती है। लोग कहते हैं, वह थूकने की भी चीज़ नहीं। पर क्या यह सत्य है कि उसका व्यवसाय उसी पर आश्रित है? क्या उसमें पुरुष का हाथ नहीं होता? तो नारी के इस पतन में पुरुष का हाथ नहीं? फिर मेरी यह समझ में नहीं आता कि निर्लज्ज पुरुष किस मुख से नारी की निंदा करता है? क्या वह स्वयं अपराधी नहीं? तो केवल नारी की निंदा क्यों होती है? यह विषमता और अन्याय क्यों?

उपर्युक्त विषमता और अन्याय का एकमात्र कारण यही है कि समाज के विधानों का निर्माता पुरुष है। वह अपनी सृष्टि का एक क्रूर विधाता है, जिसने अपनी प्रकृति का सौंदर्य विनष्ट कर रुक्षता तथा कठोरता का निर्माण किया है। पुरुष वह निर्मम शासक है, जो अपनी प्रजा के उद्गार भी नहीं सुनता। पुरुष वह उन्मत्त व्यक्ति है, जिसे अपनी उच्छृंखलता पर अभिमान होता है। आज का पुरुष 'मानव' नहीं, 'दानव' हो गया है। उसे बीता देवत्व भी याद नहीं आता।

पुरुष-समाज के नियम नारी पर ही लागू किए जाते हैं। धर्म, दर्शन और आचार के बंधन उसी के लिये बने हैं। जब देखिए, नारी ही उपवास करती है, वही श्रद्धा-भक्ति से भगवान् के नाम पर व्रत-व्रत चलती है। स्वर्ग-नरक की कल्पनाएँ और प्रलोभन

उसे ही प्रभावित करते हैं। पुरुष को इनसे क्या? वह अपनी मर्यादाएँ स्वयं तोड़ता है, परंतु न-जाने किस मुख से उन्हीं बातों को नारी से आचरित कराना चाहता है। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रंथों और प्रथाओं में नारी की जितनी आस्था होती है, उतनी पुरुष की नहीं। सरलता, क्षमा आदि गुणों में वह पुरुष से कहीं अधिक होती है। नारी का बस यही दोष है कि वह निर्बल है, पराधीन है। पुरुष के हाथों में जकड़ी है। वह जो सोचती है, वह कर नहीं सकती। समाज का वातावरण उसके लिये उपयुक्त नहीं। उसका चिंतन भ्रम या अंतर्द्वंद्व बन जाता है। उसके जीवन में अनेक समस्याएँ होती हैं। इसलिये फ्रायड-जैसे मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि भारतीय लड़कियों में ६८ प्रतिशत मानसिक गुत्थियाँ (Complexes) होती हैं। विधवाओं की मानसिक स्थिति विशेषकर गहन होती है। विधवा पुरुष-जाति का अभिशाप है। मानवता के नाम पर घोर कलंक है।

विधवा-विवाह के अभाव से समाज की पवित्रता का लोप हो रहा है। हम देखते हैं, फ़ौजी तथा सिपाही पतियों के प्रवास में उनकी स्त्रियों की स्थिति शंकित हो जाती है, तो विधवाओं की स्थिति का अनुमान आप स्वयं कर सकते हैं। जब पुरुष को पुनर्विवाह का अधिकार है, तो स्त्री को क्यों वंचित रक्खा जाय? महाभारत के प्रसिद्ध पात्र भीमने कामार्ता हिडिंबा से विशेष इच्छा न होने पर भी विवाह किया था। शायद भीम नारी के

पक्ष को समझता था। हम इस कलियुग के अकालों में "अन्नं न निन्द्यात् तद्व्रतम्" समझने लग गए हैं, परंतु उसी के साथ की पंक्ति "याचन्तीं न निन्द्यात् तद्व्रतम्" देखी भी नहीं। हमारा दृष्टि-कोण नारी के प्रति अत्यंत कठोर तथा सजग है। हम ज़रा-सी बात पर नारी का 'सतीत्व-भंग' देखने लग जाते हैं। किंतु स्वेच्छाचारी पुरुष का आलोचक 'सतीत्व' के समान कोई शब्द नहीं। कारण यह कि समाज के विधानों का निर्माता पुरुष है। यदि इसके विपरीत मनुष्य पराधीन होता, और नारी समाज के विधान निर्माण करती, तो पुरुष की वही दशा होती, जो आज स्त्री की है।

आज की नारी अपने अधिकार समझने लगी है। वह अपनी स्वतंत्रता के लिये पुरुष से होड़ ले रही है। यदि पुरुष नारी को उसके स्वाभाविक अधिकारों से वंचित रक्खेगा, तो वह भी रानी एलिज़ावेथ की तरह पुरुष-भक्ति छोड़ विवाह अस्वीकार करेगी। आज की नारी शक्ति और क्रांति का रूप धर पुरुष की अराजकता नष्ट करने के लिये अग्रसर हो रही है। वह भूमि के अंदर दबी ज्वाला स्फोट के विकट रूप में बाहर निकल आकाश तमतमाना चाह रही है। अब भी चेतें। स्त्रियों के अधिकार दे दें, अन्यथा समाज का कल्याण न होगा। वह उन्नति का स्वप्न न ले सकेगा।

सात

व्यवसाय-बुद्धि की सामाजिकता

मानव के वैधानिक जीवन की कल्पना का विवाह एक मुख्य अंग है। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार यह जीवन का विकास है, और कहीं-कहीं जीवन का अंत भी। इसी विकास और अंत के व्यवधान में मानव के सामाजिक जीवन की रूढ़ियों, धृतियों और विश्वासों की करुण कहानी निहित है। करुण कहानी इसीलिये कि आज के युग में अनेक सामाजिक मूल्य, श्रेणी और रीति (Values, Scales and Standards) मनुष्य के स्वार्थ से—जिसका रूप है अधिकार-भाव, जो स्वायत्तीकरण की ओर अग्रसर करता है (Property element which leads to monopolization)—प्रेरित होने के कारण जर्जरित हो गए हैं, और समाज के लिये—मानव-जीवन के लिये बंधन-स्वरूप बन

गए हैं। इन्हीं बंधनों में दहेज की प्रथा, जिसे हम समाज का कलंक भी कहें, तो अनुचित न होगा, आती है, जिसके निराकरण की समस्या का गंभीर विचार अत्यंत ही सामयिक और आवश्यक है। जीवन निरंतर गति है। उसकी इकाई एक प्रवाह (flow) है, वह कोई स्थिरता की वस्तु नहीं। यदि विवाह करने के उपरांत दंपति के गृहस्थ-जीवन में उनकी निरंतर गति रुक नहीं जाती, तथा वह दंपति निरंतर उन्नति की ओर बढ़ता जाता है, चाहे वह उन्नति मानसिक हो या आध्यात्मिक अथवा सांसारिक, तो हम कहते हैं—विवाह जीवन का विकास है। किंतु समाज की जिन परिस्थितियों के अनुसार विवाह करने के बाद मानव की यह गति बँध जाती है, तो उसका यह बँध जाना ही जीवन का अंत है। दहेज़ की प्रथा हमारे सामाजिक जीवन की गति का अवरोधन करती और विवाह के सच्चे स्वरूप (यह दो हृदयों के मिलन और उनकी युग्मता का नाम है) का तिरस्कार करती है। जहाँ 'मिलन' नहीं, वह विवाह नहीं, और जहाँ योग्यता नहीं, निजी व्यक्तित्व नहीं, वह भी विवाह नहीं। विवाह में दोनों की रुचि की आवश्यकता है। किंतु दहेज़ के कारण धन-कामना की भावना से प्रेरित हो हम इस पवित्र संबंध में पति-पत्नी की रुचि तथा गुणों की एकता का ध्यान नहीं रखते, इसलिये दहेज की प्रथा से विवाह धनियों का विलास और ग़रीबों की शर्म है।

हमारी संस्कृति में 'विवाह' के स्वरूप की बहुत ही पवित्रतम

कल्पना की गई है। वह है—दान के रूप में। हम अपनी प्रिय वस्तु का दान कर सकते हैं, परंतु लोभ से विक्रय नहीं। किंतु आज दहेज़ की कुप्रथा से हम कन्याओं का विक्रय करते हैं—नीलाम करते हैं, और इस प्रकार हम अपनी नासमझी से 'कन्या-दान' की पवित्रता भूल गए हैं। दान करते समय कुछ दक्षिणा देना असंगत नहीं, किंतु स्वेच्छा से, और वह भी अपना सामाजिक उत्तरदायित्व ध्यान में रखते, जिससे समाज में विषमता उत्पन्न न हो।

पूज्य राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी के शब्दों में—"पैसे के लालच से किया गया विवाह विवाह नहीं, एक नीच सौदा है।" वास्तव में यही सत्य भी है।

आज हम जीवन का प्रत्येक कार्य व्यवसाय-बुद्धि से देखते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में—सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और व्यावहारिक, कोई क्यों न हो—हमारी इस व्यापार-बुद्धि का बोलबाला है। प्रत्येक बात के प्रति हमारा ऐसा दृष्टि-कोण होना वास्तव में इस युग की एक ऐतिहासिक देन है। मुग़लों तथा अँगरेज़ों की पराधीनता ने हमें निर्धन और जड़-बुद्धि बना दिया। इसी निर्धनता के प्रतिकार में दहेज का जन्म हुआ, और हमारी इसी ऐतिहासिक पराधीनता ने अव्यक्त रूप में हमें नारी-विक्रय की प्रेरणा दी। यहाँ एक बात और विचारणीय है। वह यह कि धनियों के विवाह समाज में विषमता बढ़ाते हैं, वे निर्धनों को भोग-विलास की प्रेरणा देते हैं, समाज को दूषित

करते हैं। इस प्रकार समाज में वर्ग-भेद की कटुता और भी बढ़ जाती है, जो नितांत अवांच्छनीय है।

इस दहेज-प्रथा ने हमारा सामाजिक जीवन कितना खोखला कर दिया है, यदि हम इस पर दृष्टि-पात करें, तो हृदय काँप उठता है! लड़कियाँ इसी दहेज-प्रथा के कारण हेय बन रही हैं। इस तरह दहेज की कुप्रथा ने ही नारी के प्रति असुंदर दृष्टि-कोण बना दिया है। इस कुप्रथा के कारण विवाह-संबंध में रुचि और गुणों की एकता की अवहेलना की जाती है, जिसके फल-स्वरूप गृह-जीवन में प्रायः असंतोष ही रहता है। अनमेल विवाह भी इसी दहेज-प्रथा की देन है, जिसकी बदौलत आज हमारे समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ रही है। यह प्रथा अपव्यय को भी बहुत प्रोत्साहन देती है। इतना ही नहीं, इस प्रथा से कन्याओं का उचित अवस्था में विवाह नहीं हो पाता—कभी-कभी रह जाता है, और कितने ही अभिभावक तथा कन्याएँ इस प्रथा की बलि-वेदी पर अपने प्राणों की आहुति देने के लिये बाध्य होती हैं।

अब प्रश्न यह कि इस सामाजिक कलंक का निराकरण कैसे हो? मेरे विचार से तो इस प्रथा का उन्मूलन करने के लिये हमारे आज के नवयुवकों को आगे बढ़ना चाहिए। वे चाहे युवक हों अथवा युवती, उस विवाह को कभी स्वीकार न करें, जिसका दहेज आधार हो। वे राष्ट्र की भावी आशाएँ हैं, और आगे का युग उन्हें निर्माण करना है। इसके अतिरिक्त मैं सरकार

से भी अपील करूँगा कि वह एक परामर्शदात्री कमेटी बना उसके द्वारा आवश्यक खर्च का टोटल कर एक खर्च की सीमा बना दे। विवाह आदि में उससे अधिक खर्च करनेवाला सरकार और क़ानून के प्रति उत्तरदायी होगा। सबसे सुंदर तो यही रहेगा, हम समाज की ओर से इसका सामूहिक निराकरण करें—अभिभावकों की मनोवृत्ति बदलें, तथा स्वेच्छा से इसके उन्मूलन के लिये सामाजिक नियम बनाएँ, और उन्हें मनवाएँ। उनका उल्लंघन करनेवालों का सामाजिक बहिष्कार करें। इस प्रकार निस्संदेह दहेज़ की कुप्रथा दूर होने पर हमारे विवाह अधिक सुखमय हो सकेंगे।

आठ

दहेज़-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन की माँग

आजकल के विवाह-संबंध दहेज की प्रथा से दूषित हैं, क्योंकि इस प्रथा के कारण विवाह धनियों का विलास और ग़रीबों की शर्म है। इसके कारण समाज में निर्धनों तथा धनियों की दो श्रेणियाँ हो जाती हैं। वे एक दूसरे से विवाह नहीं कर सकते। इस तरह विषमता, कटुता और असंतोष बढ़ता है।

इसी विषमता के प्रतीक-स्वरूप समाज में इस घातक प्रथा के विरोध में एक प्रबल आंदोलन की माँग है। समाज के साधारण वृत्ति के लोग इसमें अविलंब सुधार कराना चाहते हैं। इसी के बारे में एक बार पूज्य राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने भी 'यंग-इंडिया' में लिखा था—"अपमान-जनक दहेज-प्रथा के विरोध में एक प्रबल जन-मत तैयार किया जाना चाहिए।" इसीलिये

इस आंदोलन की माँग के अर्थ, क्षेत्र तथा स्वरूप का विश्लेषण—गंभीर विचार अत्यंत ही सामयिक और आवश्यक है।

इस सामाजिक आंदोलन की माँग का सीधा अर्थ हम यही लेते हैं कि समाज की ओर से इसका सामूहिक निराकरण हो, अभिभावकों की मनोवृत्ति बदले, तथा स्वेच्छा से इसके उन्मूलन के लिये सामाजिक नियम बनाएँ और उन्हें मनवाएँ। इस दृष्टि-कोण से जब हम इस आंदोलन के स्वरूप पर विचार करते हैं, तो हमारी राय में यह व्यापक नहीं हो सकता। इसका रूप व्यक्तिगत क्षेत्र से विशेष संबंधित प्रतीत होता, और इस मार्ग का अनुशीलन करने पर ही इसकी सफलता की विशेष आशा की जा सकती है। इसके लिये समाज के धनी-वर्ग की ही ज़िम्मेदारी अधिक है। वह सर्वप्रथम इसे अपने अंदर से दूर करें। वास्तव में समाज का धनी-वर्ग ही इस योग्य भी है कि इस कुप्रथा को अपने वर्ग में आसानी से बंद कर सकता है। इस तरह समाज के एक विशिष्ट अंग का यह एक व्यक्तिगत कर्तव्य हो जाता है। यह कर्तव्य निभा वह मध्यम वर्ग के सामने एक उदाहरण रक्खे। मध्यम वर्ग सहर्ष इसका अनुकरण करेगा, क्योंकि कोई भी कार्य अगर समाज के मुख्य और धनी-मानी लोगों द्वारा किया जायगा, तो उसका रूप अति शीघ्र व्यापक होगा; यह निःसंदेह है। इसलिये इस आंदोलन के प्रारंभ का श्रेय हमारे धनी-वर्ग को ही लेना चाहिए, जो उसके लिये उपयुक्त है।

समाज के सभी धनी-मानी सज्जनों से हमारा नम्र निवेदन है, यदि वे चाहते हैं, समाज से इस प्रथा का शीघ्र ही उन्मूलन हो, तो उन्हें यह नियम बना लेना चाहिए, वे उन विवाहों में कदापि सम्मिलित न होंगे, जिनमें दहेज का व्यवहार होगा। इसी रूप में यह आंदोलन चलाया जा सकता है। अन्यथा ५० वर्षों से हज़ारों प्लेट-फ़ार्मों और सैकड़ों सभाओं से, जिनमें देश के बड़े-बड़े आदमियों ने सभापतित्व किया था, यह आंदोलन चलाया गया है, परंतु घटने के बजाय यह कुप्रथा बढ़ती ही गई है, और अभी तक सफलता नहीं मिली। इतना ध्यान रखना आवश्यक है, हमारे धनी-वर्ग द्वारा दहेजवाले विवाह के बहिष्कार के नियम का पालन बहुत ही सच्चाई तथा कड़ाई के साथ होना चाहिए, क्योंकि ऐसे नियम को एक के भी तोड़ने से आंदोलन की प्रगति में पूरी शिथिलता आ जायगी।

अंत में हम अपने धनी-वर्ग से सानुरोध अपील करते हैं, वह इस सामाजिक सुधार के काम में आगे आवे, और दहेज-प्रथा के उन्मूलन का काम अपने हाथ में ले यह आंदोलन आगे बढ़ावे। समाज के युवक-युवतियों से भी हमारा यह कहना है, वे उस विवाह को कभी स्वीकार न करें, जिसका दहेज आधार हो। आज समय और समाज की यही माँग है। आशा है, इस पर समुचित ध्यान दिया जायगा।

नौ

समाज का क्षय-रोग

प्राचीन भारत में नारी की विशेष प्रतिष्ठा थी। संस्कृत के एक श्लोक की यह पंक्ति है—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहीं देवताओं का वास होता है। वेदों में प्रिय वस्तु को कन्या से उपमा दी गई है। हम प्रिय वस्तु का दान कर सकते हैं, परंतु लोभ से विक्रय नहीं। किंतु आज दहेज़ की कुप्रथा से हम कन्याओं का विक्रय करते हैं, हम अपनी नासमझी से कन्या-दान की पवित्रता भूल गए हैं।

जब विवाह के विधान का निर्माण नहीं हुआ था, स्त्री-पुरुष स्वाभाविक रूप में इस संबंध का निर्माण करते थे। इसके अनंतर भी विवाहोत्सवों में रुचि तथा गुणों की समता का ध्यान रक्खा जाता था। सीता तथा दमयंती के स्वयंवर इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। कालिदास के समय में भी विवाह की पवित्रता विद्य-

मान थी। विदुषी विद्या ने अपने पति के वरण के लिये शास्त्रार्थ किए थे। अंत में विजयी कालिदास से उसने विवाह किया था। इससे स्पष्ट है, तब विवाह में योग्यता का ध्यान रखते थे। वे जीवन की यह गहन समस्या उथले रूप से देखते थे। उसमें पवित्रता का वास था। गंभीरता थी। धन-कामना की भावना न थी।

महाभारत से महान् भारत का पतन होता है। उस समय सामाजिक मर्यादाएँ टूट चुकी थीं। काम, क्रोध तथा अर्थ-मोह की भावना ने मनुष्यों को खोखला बना दिया था। वे नारी की पवित्रता तथा उसके प्रति सम्मान भूल गए थे। राज-सभा में द्रौपदी के चीर-हरण से यह व्यक्त है।

इसके बाद देश में यवनों का आगमन हुआ। उनकी सभ्यता भोग की सभ्यता थी। वे विलास-प्रेमी थे। उन्होंने संयम न सीखा था। इस जाति में बहु-विवाह की प्रथा थी। किंतु यह सत्य है, यह प्रथा धन के बिना फल नहीं सकती। बहु-विवाह वस्तुतः धनियों का विलास है—नारियों का धन पर विक्रय है। मुग़ल-सम्राटों ने भारतीय कन्याओं से विवाह किए। हमारी पवित्रता भंग की। इस तरह उन्होंने अव्यक्त रूप में हिंदुओं को नारी-विक्रय की प्रेरणा दी। धीरे-धीरे हमारी शिक्षा का लोप हो रहा था। समाज में कुरीतियाँ बढ़ने लग गईं। मुग़लों तथा अँगरेज़ों की पराधीनता ने हमें निर्धन और जड़-बुद्धि बना दिया। निर्धनता के प्रतिकार में दहेज़ का जन्म हुआ। हम

उसके दोष न समझ सके। हमारा स्वाभिमान तथा विश्वास नष्ट हो चुका था। इसलिये इस कुप्रथा का विरोध कौन करता? अतः आज हम उसके दुष्परिणाम भोग रहे हैं।

आजकल के विवाह-संबंध में रुचि तथा गुणों की समता का ध्यान नहीं रक्खा जाता। धनी लोग विवाहों में अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते हैं। उत्सव के विलास से पवित्रता दब जाती है। वे संबंध की गंभीरता भूल विनोद में मग्न हो जाते हैं। परंतु धन ही गृह-जीवन को सुखी नहीं बनाता। उसका आधार गुणों की समता, रुचि की एकता तथा कर्तव्य-भक्ति है। धनियों के विवाह समाज में विषमता बढ़ाते हैं। वे निर्धनों को भोग-विलास की प्रेरणा देते हैं। समाज को दूषित करते हैं।

जब बच्चे का जन्म होता है, तो माता-पिता के हृदय में यही कामना होती है, उनके पुत्र हो; क्योंकि यदि कन्या होगी, तो विवाह में धन की बर्बादी होगी। संबंधी भी पुत्रोत्पत्ति पर धन्यवाद देने में गौरव अनुभव करते हैं। परंतु इसके विपरीत उनकी प्रसन्नता सांत्वना के तुल्य होती है। इस तरह दहेज की कुप्रथा ने जन्म से ही नारी के प्रति असुंदर दृष्टि-कोण बना दिया है। हम यह भूल जाते हैं, प्रत्येक पुरुष का जन्म नारी से ही होता है।

माता-पिता कन्या के भविष्य के लिये चिंतित रहते हैं। निर्धनों को और भी मुसीबत होती है। वे जैसे-तैसे धन जोड़ विवाह करते हैं। विवाह का उत्तरदायित्व निभा लेने पर ही वे संतोष

की साँस लेते हैं, अन्यथा वह उनके लिये बंधन बना रहता है।

इस कुप्रथा से विवाह में पति-पत्नी की रुचि तथा गुणों की एकता पर ध्यान नहीं रक्खा जाता। इसलिये प्रायः गृह-जीवन में असंतोष ही रहता है। वे सहयोगी न बनकर वियोगी बनना चाहते हैं।

दहेज की प्रथा से समाज में निर्धनों तथा धनियों की दो श्रेणियाँ हो जाती हैं। वे एक दूसरे से विवाह नहीं कर सकते। इस तरह विषमता बढ़ती है।

इस प्रथा से कन्याओं का उचित अवस्था में विवाह नहीं हो पाता। कभी-कभी रह भी जाता है। यौवन में यौन प्रवृत्ति का संयम अत्यंत कठिन वस्तु है। कोई ही व्यक्ति इस प्रवृत्ति का परिष्कार कर पाता है! अन्यथा जो दुष्परिणाम होते हैं, वे हमारी आँखों से छिपे नहीं। अधिक देर तक अंधा रहना भी कठिन है। हमें सजग रूप से यह कुप्रथा दूर करनी ही होगी।

हमारे देश में दहेज-प्रथा के निवारण में आर्य-समाज ने प्रयत्न किया है। हम उसके लाभ देखते हैं। इसलिये हमें भी इस कार्य में सहयोग देना चाहिए।

इस विषय में हम दूसरे देशों से भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। योरप में विवाह पति-पत्नी की रुचि पर, धर्माध्यक्ष की साक्षी के साथ, होता है। वे विवाह में हमारे-जैसा आडंबर नहीं करते। उनमें दहेज-प्रथा तो बिलकुल ही नहीं होती। चीन में विशेष दिनों में विवाह होते हैं। पति-पत्नी हाथ पकड़े नियत स्थान पर

प्रदक्षिणा करते हैं। एक ही दिन में अनेक विवाह, जलूसों के रूप में, हो जाते हैं। उनके वस्त्रों में समता होती है। उत्सव में अपार जनता एकत्र होती है। विवाह में धन का अपव्यय नहीं होता और न सामाजिक विषमता बढ़ती है।

यह कुप्रथा दूर करने के लिये सभी को योग देना चाहिए। किंतु समझदार तथा माननीय पुरुष यह कार्य सुगमता से कर सकते हैं, क्योंकि जनता में उनका सम्मान तथा उनमें स्वाभिमान होता है। वे समाज को प्रेरणा दे सकते हैं। जनता नेताओं का ही अनुकरण करती है। निःसंदेह दहेज की कुप्रथा दूर होने पर हमारे विवाह अधिक सुखमय हो सकेंगे, और वास्तविक प्रगति तभी होगी, जब समाज इस भयंकर संक्रामक रोग से पूर्ण रूप से मुक्त हो अपने सच्चे रूप में बलिष्ठ और हृष्ट-पुष्ट हो जायगा।

दस

मातृमुक्ति-यज्ञ

("मातृजाति का परदा दूर करना ही वास्तविक आज़ादी प्राप्त करना है।"—महात्मा गांधी)

आज हमारे समाज में अनेक कुप्रथाएँ फैली हैं। उनमें से एक परदा-प्रथा भी है। पुरातनता के प्रेमी और अंधविश्वासी जन उसके समर्थक हैं। यदि आप उनसे पूछें, आप परदे को क्यों पसंद करते हैं, तो वे इसका यही उत्तर देंगे कि हमारे पुरखा इसे करते आए हैं। हमें उनके आदेशों और प्रथाओं के अनुसार ही चलना चाहिए। वे हमसे बुद्धिमान् थे, और हमें उनके दोष न निकालने चाहिए। यदि हम उनसे यह प्रश्न करें—क्या इस प्रथा के पीछे कोई धार्मिक भावना या स्वास्थ्यकर नियम कार्य करता है? तो वे मौन रहेंगे। इससे उनकी अज्ञानता

स्पष्ट हो जाती है। अतः इन व्यक्तियों को प्रामाणिक भी नहीं कहा जा सकता।

एक विद्वान् ने कहा है—किसी वस्तु की श्रेष्ठता प्राचीनता या नवीनता पर आश्रित न होकर उपादेयता पर होती है। इसलिये हमें केवल प्राचीनता को प्रमाण नहीं मानना चाहिए। यदि हम वर्तमान युद्ध में तलवार और भालों का प्रयोग इसलिये करें कि वे प्राचीन हैं, तो हमारी हार ही होगी। हम मूर्ख तथा विवेक-शून्य समझे जायँगे। इसलिये हमें उपयोगिता और लाभ कभी न भूलना चाहिए। इसी प्रकार परदे के प्रश्न पर भी विचार करें। यदि वह उपयोगी प्रतीत न हो, तो उसे छोड़ दें; अन्यथा स्वीकार करें।

वृद्ध लोग इस प्रथा की महत्ता के लिये युक्तियाँ छोड़ अनेक कल्पित और मिथ्या गाथाओं का आश्रय लेते हैं। परंतु तर्क-शास्त्र या न्याय की दृष्टि से विषय-प्रतिपादन की यह विधि सर्वथा अनुचित है। अपनी पुष्टि के लिये वे कथाएँ सुनाएँगे, और उन्हें पौराणिक बताएँगे; परंतु किसी प्रामाणिक ग्रंथ का उल्लेख न करेंगे। उनका ज्ञान श्रुति-परंपरा पर आश्रित होता है, चाहे वह सत्य हो या असत्य। हम उनके संतोष के लिये यह कहेंगे, यह प्राचीन काल में न थी। इसका धार्मिक या स्वास्थ्य-संबंधी आधार नहीं। आप धार्मिक जगत् की पूजनीय देवियों—लक्ष्मी और सरस्वती आदि—को देखें। उनके मुख पर परदा नहीं। सीता और दमयंती आदि भारतीय सभ्यता की प्रतिनिधि स्त्रियों को

लें, उनसे भी इस प्रथा का पोषण न होगा। स्वतंत्र भारत में इस प्रथा का नाम न था। परंतु मुग़लों के काल में देश में दुराचार फैलने लगा। हमारी ललनाओं और कुमारियों के सौंदर्य पर मुग्ध हो उन्होंने अपनी वासना-तृप्ति के लिये उनका धर्म भ्रष्ट किया। उस समय शक्ति-हीन हिंदुओं ने आपद्धर्म के रूप में यह प्रथा स्वीकार कर ली। उस समय इसकी उपयोगिता थी, परंतु इस समय उपयोगिता के अभाव में हम इसकी हानियों के शिकार हो रहे हैं। प्रत्येक वस्तु का महत्त्व देश, काल, परिस्थिति पर आश्रित होता है। यदि ये बदल जाते हैं, तो उसकी उपयोगिता में भेद हो जाता है। वही लाभप्रद वस्तु दृढ़ बंधन या निष्प्राण रूढ़ि बन जाती है। अब समय और परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं, इसलिये यह प्रथा हमें छोड़ देनी चाहिए। यह अब युग-धर्म नहीं।

शिक्षा का उद्देश्य बौद्धिक विकास है। वह हमें जीवन-यापन के योग्य बनाती है। प्राचीन प्रथाओं की भावनाएँ समझाती है, और वही नवीन विचार-धाराओं को जन्म देती है। बौद्धिक विकास का यही अभिप्राय है, मनुष्य जीवन की उपयोगी और अनुपयोगी बातें समझ सके। अपना हित-अहित, लाभ-हानि आदि पहचान सके। अतः हमें इस प्रथा के पक्ष-विपक्ष पर समुचित विधि से विचार कर लेना चाहिए। मूढ़ तथा अशिक्षित की तरह किसी वस्तु को बिना समझे ही न मान लेना चाहिए। यदि वृद्धों या प्राचीनता-प्रेमियों को परदे की

अनुपयोगिता समझ में आ जाय, तो बच्चों या आधुनिकता के उपासकों की बात भी स्वीकार कर लेनी चाहिए। जब सूर्य नहीं होता, तब दिए से काम लिया जाता है। जब बड़ों की बातों से कोई लाभ नहीं, तो बच्चों की बात मानने में खराबी नहीं। परदे का नारियों के स्वास्थ्य पर ख़राब प्रभाव पड़ता है। उन्हें शुद्ध वायु और प्रकाश नहीं मिलता। इससे उनके चेहरे पीले और निष्प्राण हो जाते हैं—दमा और तपेदिक़ की बीमारियाँ हो जाती हैं। यही नहीं, इस प्रथा का प्रभाव उनके स्वभाव पर भी पड़ता है। इससे उनमें अनावश्यक झिझक आ जाती है। वे अपने मन की बात नहीं कह पातीं। उनमें स्वाभिमान नहीं रहता, और एक विशेष प्रकार की मानसिक दुर्बलता आ जाती है।

हमारे नारी-समाज के पतन में परदे का बहुत बड़ा हाथ है। इससे स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं जा पातीं। दुनिया के ज्ञान से दूर रहती हैं। अशिक्षिता और अनुभव-हीन होने से अपने बच्चों का समुचित पालन नहीं कर पातीं। वे अपने पतियों पर आर्थिक भार होती हैं, इसका कारण भी यही प्रथा है। विदेशों में इस प्रथा का नाम नहीं। वहाँ की स्त्रियाँ सभी सामाजिक कार्यों में भाग लेती हैं। वे शिक्षिता होतीं और अपने बच्चों को शिक्षित बनाती हैं। वे हमारी तरह खाली न रह स्वयं कमाती हैं, और पतियों पर भार नहीं होतीं। विद्यालयों, अस्पतालों, तार-टिकट-घरों आदि में वे प्रायः कार्य करती

हैं। युद्ध के दिनों में और आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने सेना तथा शासन-संबंधी सभी कार्य किए हैं। इस तरह वे देश को उच्च बनाती हैं। हमें उनसे शिक्षा ग्रहण कर यह प्रथा दूर करनी चाहिए।

अभी भारतीय सरकार ने इस आशय की विज्ञप्ति प्रकाशित की है कि शासन तथा सेना-विभाग के पदों पर भी स्त्रियों को स्थान दिया जायगा। वह देश की स्त्रियों से आशा करती है, वे अपनी योग्यता द्वारा राष्ट्र-निर्माण में पूर्णतया सहयोग दें। परंतु यह तभी संभव है, जब हमारी स्त्रियाँ सुशिक्षित, व्यवहार-कुशल और योग्यता-युक्त हों। किंतु उपर्युक्त बातें प्राप्त करने के लिये परदे की प्रथा छोड़नी पड़ेगी। अतः स्त्रियों को अपने कर्तव्य और उद्देश्य देखते इससे मुक्त होने के लिये प्रयत्न करना चाहिए। यदि वे चाहें, तो पुनः भारती (मंडन मिश्र की पत्नी) की तरह विदुषी बन सकतीं और तारामती की तरह अलौकिक शारीरिक शक्ति प्राप्त कर सकती हैं। परंतु परदे के रहते यह संभव नहीं। हमारी स्त्रियों को विदेशी स्त्रियों की स्थिति से अपनी तुलना करनी चाहिए। इससे प्रेरणा मिलेगी। मैडम क्यूरी एक निर्धन महिला थीं। उसने रसायनशाला की शीशियाँ माँजकर वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त की। इन कठिन परिस्थितियों में वह तत्परता से अपने कार्य में लगी रही। एक दिन वही स्त्री विज्ञान के क्षेत्र में नोबल-पुरस्कार प्राप्त करती है। इसी प्रकार अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। हे भारतीय नारियो ! क्या तुम्हें

उनसे ईर्ष्या नहीं होती ? ज्ञान-विज्ञान अपनाने में तुम्हें गौरव अनुभव नहीं होता ? यदि होता है, तो उठो; अपने बंधन स्वयं तोड़ो, और आगे बढ़ो।

परदे का अंत करने के लिये हमें सब प्रकार से सहयोग देना चाहिए। हमें संयम का ध्यान रखते नारियों तथा कन्याओं की ओर न घूरना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की हरकतों से परदा-प्रथा दूर करने में बाधा उपस्थित होती है। नारी के देवीपन और प्रतिष्ठा को न भूलना चाहिए। आज समाज के नेता इस कार्य के लिये सजग हो रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है। केवल भाषणों और लेखों से सफलता नहीं मिलती। कहने के बजाय करने का अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि परदा-विरोधी आंदोलन में सत्याग्रही मनोवृत्ति से कार्य किया जायगा, तो उससे अच्छा परिणाम होगा। सत्याग्रहियों को विनय, सहिष्णुता और प्रेम-पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। युवक-युवतियों को स्वयं उदाहरण पेश करके समाज को योग्य प्रेरणा देनी चाहिए। जिस दिन हमारे समाज से परदे का अंत हो जायगा, उस दिन उन्नति स्वयमेव हो जायगी।

ग्यारह

परदा-बहिष्कार—उसकी आवश्यकता

प्राचीन भारत में हम पूर्णतः स्वतंत्र थे। हमें वैयक्तिक तथा सामाजिक स्वाधीनता प्राप्त थी। पुरुष और नारी में संकोच या भेद-भाव न था। वे एक दूसरे को खुलकर सहयोग देते थे। उत्सवों में समभाव से भाग लेते थे। तब परदे की दूषित प्रथा न थी। परंतु आज इस कुप्रथा से हमारी उन्नति रुक गई है। स्त्री-जाति विनाश की ओर अग्रसर हो रही है। क्या आपको उस अतीत से ईर्ष्या नहीं होती?

तब स्त्रियों की उन्नति बहुमुखी थी, उनकी प्रतिभा का क्षेत्र विस्तृत था। गार्गी ब्रह्मज्ञान में निपुण थी, तो सीता आदर्श स्त्री थीं। वे ज्ञान-विज्ञान से परिचित थीं। उनकी संतान सुंदर तथा सबल होती थी। शुभ संस्कार पा उच्च वातावरण में बढ़ती थी। वस्तुतः वे देवियाँ रत्न-गर्भा थीं। संघमित्रा और

चारुमति ने घूम-घूम बौद्ध धर्म का प्रचार किया। मंडन मिश्र की पत्नी भारती ने तर्क-शिरोमणि शंकराचार्य को परास्त किया। मीरा ने अपने भक्तिमय गीतों से निज आराध्य कृष्ण को रिझाया। तब परदे का बंधन न था। वे सहज भाव से राज-गृह तथा वृंदावन में प्रभु की पूजा कर सकती थीं। अनेक भक्त उनके गीतों का रस-पान करते थे। क्या आज भी यह संभव है?

परंतु जब यह भूमि मुग़लों के अधीन हो गई, तो इसकी पवित्रता लोप होने लगी। हमारी सभ्यता में नारी की जो प्रतिष्ठा थी, वह उनमें नहीं थी। इसके विपरीत उनमें बहु-विवाह की दूषित प्रथा थी। उनके आचार के नियम शिथिल थे। भौतिक सभ्यता के पुजारी मुग़ल संयम से सर्वथा दूर थे। उन्होंने मद में चूर्ण हो अपनी दुर्भावनाओं तथा विलास के निमित्त शासक-जाति के बल का अनुचित तथा अनर्गल प्रयोग किया। हमारी कन्याओं के रूप-लावण्य पर मोहित हो उन्हें अपनाने के लिये अनेक यत्न किए। धन तथा मान के प्रलोभन दे उन्हें खींचा गया। तब स्त्री-धर्म की रक्षा के लिये आपद्धर्म के रूप में परदे की प्रथा का प्रसार हुआ। पराधीन जाति इसके सिवा कर ही क्या सकती थी?

परंतु आज वह पुरानी स्थिति नहीं। ज़माना बदल गया है। परदे का प्रयोग जिस कारण से किया गया, वह आज नहीं। इसलिये अब इसकी ज़रूरत नहीं। परंतु प्राचीनता के प्रेमी,

अंध-विश्वासी तथा मूढ़ व्यक्ति अब भी परदे को नारी का धर्म समझ रहे हैं। यह रूढ़िग्रस्तता अत्यंत शोचनीय है। इस कुप्रथा से देश की उन्नति रुक रही है। अब वह युग-धर्म नहीं। हम उसके पीछे क्यों कर चलें? देश, काल तथा परिस्थितियों के परिवर्तन से वही प्रथा कुप्रथा हो गई है। उसका कोई भी लाभ नहीं, प्रत्युत अनेक दोष या हानियाँ दिखाई दे रही हैं। फिर इससे इतना मोह क्यों?

परदे का प्रथम प्रभाव स्त्रियों के स्वास्थ्य पर पड़ता है, क्योंकि वे शुद्ध वायु में साँस नहीं ले पातीं। बाहरी वायु का परदे की वायु से संबंध टूट जाता है, और वह प्रच्छ्वासों की अशुद्ध वायु से और भी दूषित हो जाती है। वे ऑक्सीजन की जगह कार्बन-डाइ-ऑक्साइड लेती हैं। अशुद्ध वायु के सेवन से हृदय, रुधिर तथा वात-संबंधी बीमारियों का आह्वान करती हैं। क्षय-रोग निमंत्रित करती है। यही नहीं, सूर्य की सुखकारी किरणें भी उनके मुख से सदैव दूर रहती हैं, जिसके परिणाम में उनका चेहरा कांति-हीन हो जाता है। इस प्रकार हमारी स्त्रियाँ परदे की कुप्रथा से सूर्य तथा वायु के लाभों से वंचित रहती हैं। इससे वे अबलाएँ बन निर्बल संतानें पैदा करती हैं। क्या वे सच्ची माताएँ और रत्न-गर्भा हो सकती हैं? परंतु पहाड़ी प्रदेशों में अथवा जिन ग्रामों में यह प्रथा नहीं, वहाँ की स्त्रियाँ अधिक सुंदर तथा सबल होती हैं। उनके दीर्घ जीवन का कारण शुद्ध वायु तथा सूर्य का सेवन भी है। हमारी स्त्रियाँ इस कुप्रथा के

कारण व्यायाम से सदा दूर रहती हैं, अन्यथा क्या वे ही अबलाएँ 'तारामती'-सी सबलाएँ नहीं बन सकतीं ?

परदे का द्वितीय प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है। स्त्रियों को परदे में रहना जरूरी है, इसलिये वे घर से बाहर नहीं निकल सकतीं। वे शिक्षा ग्रहण करने के लिये विद्यालय कैसे जायँ ? अजायबघर या चिड़िया-घर का दर्शन तो दूर रहा। वे आजीवन मूर्ख रहती हैं, और ज्ञान का सुख नहीं ले सकतीं। उन्हें न लिखना आता है, न पढ़ना। वे व्यवहार की दुनिया नहीं जानतीं। क्या वे स्त्रियाँ अपने कर्तव्य और आदर्श समझ सकती हैं ? क्या वे देश या समाज का उद्धार कर सकेंगी ? क्या संसार की विकट समस्याएँ सोच सकेंगी ?

इसलिये उनकी संतान भी मूढ़ होती हैं। उनका बचपन अज्ञता में बीत जाता है। सचमुच यह समाज के लिये शर्म की बात है। कलंक का कारण है। यदि अधिक संभव न हो, तो भी कम-से-कम स्त्रियों को इतनी शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए कि वे स्वास्थ्य, शिशु-पालन, गृह-कर्म, स्त्री-धर्म तथा संसार के सामान्य ज्ञान से परिचित हो सकें।

परदे का तृतीय प्रभाव हमारे समाज पर पड़ता है। स्त्री तथा पुरुष मिलकर कोई भी कार्य नहीं कर सकते। स्त्रियाँ घर के अतिरिक्त बाहरी काम करने में अयोग्य रहती हैं। परंतु क्या इस गतिशील युग में यह संभव है, वे घर की चहारदीवारी में मुख छिपाए बैठी रहें ? विदेशों में अनेक स्त्रियां ज्ञान-विज्ञान

का अध्ययन करती हैं। अपनी सेवाओं से समाज को सपन्न बनाती हैं। आर्थिक दृष्टि से भी अन्य देशों की स्त्रियाँ अपने पतियों पर उतना भार नहीं होतीं, जितना इस निर्धन देश में। फिनिलैंड और रूस के युद्ध में फिनिलैंड की स्त्रियों ने सेना में भाग लिया था। देश का लगभग सभी आंतरिक प्रबंध उनके हाथों में था। वे ही स्त्रियाँ सच्चे अर्थों में पति की अर्धांगिनियाँ तथा जीवन-संगिनी होती हैं। सचमुच हमारे समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय है।

ये सभी अभिशाप परदे की कुप्रथा के परिणाम हैं। उनसे हमारी जाति तथा समाज का विनाश हो रहा है। हम अवनति के कुएँ में बड़े वेग से गिर रहे हैं। यदि फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं, तो हम-सा अंधा कौन होगा? हमने अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारी है। हम ख़ून बहता देख रहे हैं, और संशय में सोच रहे हैं कि इसका प्रतिकार करना चाहिए या नहीं। सचमुच यह 'किं कर्तव्य-विमूढ़ता' अतीव विचित्र है।

हमारे कुछ मान्य नेताओं ने इस विषय में कार्य किया है। हमें उनका सच्चे अर्थों में अनुगमन करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को कर्तव्य-बुद्धि से यह प्रथा अपने घर से निकाल देनी चाहिए। तभी हमारी जाति तथा समाज की उन्नति संभव है। तभी हम अपना अतीत गौरव वर्तमान में स्थापित कर सकेंगे।

बारह

परदा-विरोधी आंदोलन

आज का युग एक संघर्ष का युग है। जीवन के प्रत्येक भौतिक मूल्यों में आज विकार उपस्थित है। मानव का सामाजिक भूमिका-पट अब प्रतिहिंसा और इनक़िलाब के आघात-प्रतिघातों से चित्रित हो उठा है, क्योंकि भूतकाल में मानव के बनाए अपने बंधन इतने दृढ़ हो गए थे कि उनमें बँधा वह स्वयं अकुला उठा है। उसकी यह अकुलाहट ही परदा-विरोधी आंदोलन की पृष्ठ-भूमि है।

इन बंधनों को तोड़ने की आवाज़ मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुन पड़ती है—क्या समाज, क्या राजनीति, क्या साहित्य, सभी में। विशेष रूप से सामाजिक क्रांति की हमारी यह प्रवृत्ति जीवन की कठोर वास्तविकताएँ ले आगे बढ़ी है,

तथा प्रचार और सामूहिक चेतना द्वारा सभी सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों का अंत करके समाज को प्रगतिशील बनाना ही हमारा कार्य-क्षेत्र है।

सुधार के दो दृष्टिकोण हैं—एक तो यह कि प्राचीन काल की अंतःपरिस्थितियाँ अंदर-ही-अंदर एक संघर्ष के बीच से गुजरती रहें, और चलते-चलते वर्तमान में इतनी स्पष्ट हो जायँ कि उनकी प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप मानव के सामाजिक जीवन में एक भीषण परिवर्तन उपस्थित हो जाय। इसे हम सुधार का विकास-पक्ष कह सकते हैं। इसके आधार पर जीवन का प्रत्येक परिवर्तित मूल्य निर्धारित करने के लिये उसका सूत्र अपने बीज रूप में मानव की प्राचीन रूढ़ियों, धृतियों और विश्वासों में खोजना पड़ेगा। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि वर्तमान में मानव-जीवन के प्रचलित मूल्य, श्रेणी और रीति (Values, Scales and Standards) को पूर्ण रूप से जड़ से हटा उनके स्थान पर बिलकुल नवीन और सामयिक सत्य, माप-दंड तथा सामाजिक मान स्थापित किए जायँ। यह सुधार का क्रांति-पक्ष है। एक प्रगतिशील सुधारवादी सुधार के इस दूसरे स्वरूप में अपनी आस्था रखता है, जो अधिक पुष्ट तथा उपयोगी है; और सच्ची प्रगति के लिये यही अभीष्ट है, सामाजिक क्रांति के लिये यही अपेक्षित है; क्योंकि मानव ने जितना समाज-व्यवस्था करने का प्रयत्न किया, उतनी ही वह उसके लिये पहेली बनती गई, और अव्यवस्था होती गई। यह मस्तिष्कों का प्रश्न बन

गया। इतना ही नहीं, बल्कि जितना उसने सुधार करना चाहा, उतना ही उसके स्वार्थ ने उसके अंतर् में छिप, नए रूप धारण कर अपने को व्यक्त किया। यही कारण है, आज हम अपने समाज की कमजोरियों का अनुभव करते हैं, उस समाज की, जो नैराश्य एवं अवसाद-ग्रस्त हो रहा है। हमारा अंतर् सर्वजन-सम्मत कर्तव्य-ज्ञान के विरुद्ध पद-पद पर विद्रोह कर उठता है।

हम अपने प्राचीनता-प्रेमी भाइयों से बड़ी नम्रता-पूर्वक यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं, समय और समाज की माँग के प्रतीक-स्वरूप आज की प्रगति-प्रेरणा चाहती है नीति, धर्म, सामाजिक रीतियाँ आदि के संबंध में प्राचीन धारणाओं का आमूल परिवर्तन तथा इनकी व्यर्थता।

कुछ रूढ़िवादी यह साबित करने का प्रयत्न करते हैं, भारत में अति प्राचीन काल से परदा-प्रथा प्रचलित थी। इसके लिये वे संस्कृत के शब्द 'अवगुंठन' आदि का सहारा लेते तथा रामायण और महाभारत से अपनी भ्रामक धारणा की पुष्टि, अर्थ का अनर्थ कर, करते हैं, जिससे 'विरोध केवल विरोध के लिये' की गई भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है। वास्तव में 'अवगुंठन' का प्रयोग उसके भावात्मक रूप में काव्योक्ति की भाँति किया गया है, किंतु उसका कोई भौतिक व्यावहारिक स्वरूप न था, जिसका अर्थ उन्होंने 'घूँघट' अथवा 'परदा' किया है। जहाँ वे कहते हैं, लज्जा स्त्रियों का भूषण है, और

परदा उनका प्रतीक, हम उससे सहमत हैं। किंतु यहाँ परदे से अभिप्राय आँखों की शर्म तथा शील से लेना चाहिए, न कि उसका अर्थ घूँघट-जैसी कुप्रथा से किया जाना चाहिए। स्त्रियोचित लज्जा वांछनीय है, किंतु यह विचार और मन का विषय है, परदा-प्रथा से इसका कोई संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता; जो रूढ़ि की भाँति एक बाहरी आवरण के रूप में हम पर लाद दिया गया है।

हम ऐसे लोगों को भले प्रकार बता देना चाहते हैं, हमारे परदा-विरोधी आंदोलन का जो रूप है, वह किसी से ज़बरदस्ती करना नहीं, प्रत्युत उसका उद्देश्य शुद्ध प्रचारात्मक है, और हमारा सत्याग्रह भी इसी भावना को ले एक सामूहिक साधन है। अब विवाहों के अवसर पर जो सत्याग्रह किया जाता है, वह इसलिये कि इसी दिन से यह अवांछनीय बंधन नारी-समाज पर लादा जाता है, इसलिये इस अवसर पर जो सत्याग्रह किया जाय, वह केवल जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिये हो—उसका मंतव्य किसी को दुःख पहुँचाना न होना चाहिए। कोई बात ग़लत समझ समाज में भ्रम-पूर्ण धारणा फैलाना किसी ज़िम्मेदार व्यक्ति को शोभा नहीं देता—हम इस कर्तव्य की ओर उनका ध्यान दिलाना चाहते हैं। अंत में हम बड़ी नम्रता से अपील करते हैं, सामाजिक सुधारों से पारस्परिक कटुता नहीं बढ़नी चाहिए, क्योंकि इससे सार्वजनिक

हित का जो उद्देश्य है, वह गौण हो अपने निजी स्वार्थ किन्हीं दूसरे मंतव्यों के कारण प्रधानता पा जाते हैं। आशा है, हमारे सभी सहयोगी इस पर समुचित ध्यान दे अपना सच्चा कर्तव्य निभाएँगे।

तेरह

परदा-विरोधी सत्याग्रह—उसका नैतिक पक्ष

परदा-प्रथा के विरुद्ध समाज में जो आंदोलन चल रहा है, आज उसे एक नई प्रगति (दिशा) मिली है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति ने हममें एक नई सामाजिक चेतना फूँक दी है, जिसके फल-स्वरूप समाज में प्रचलित प्रायः सभी कुरीतियाँ, कुसंस्कार और हानिकारक रीति-रिवाज दूर करने के लिये हम व्यग्र हो उठे हैं। हममें से सामाजिक सुधार की भावना रखने-वाले प्रत्येक उत्तरदायी व्यक्ति ने ऐसा अनुभव किया कि समाज से परदा-प्रथा तथा दूसरी सामाजिक रूढ़ियाँ हटाने के लिये सामूहिक प्रयास करना आवश्यक है, और भूतकाल के सुधार-आंदोलन के अनुभव से कुछ ऐसा भी महसूस होता था कि कोई ऐसा नया क़दम उठाया जाना चाहिए, जो अधिक प्रभाव-शाली हो। इसी दृष्टि से हमारा ध्यान प्रचार के बाद जो दूसरी

स्थिति होती है—सत्याग्रह, उसकी ओर जाता है। प्रचार से तो हम केवल इतनी ही अपेक्षा कर पाते हैं कि संबंधित मानव-समुदाय स्वयं अपने आप वस्तुस्थिति पर विचार कर वह वस्तु अपनाएगा। किंतु जहाँ मनुष्य एक बात हृदय से मानते भी अपने व्यावहारिक जीवन में उसे कार्यान्वित करने में हिचकिचाता है, वहाँ प्रचार करने से काम नहीं चलता, क्योंकि प्रचार की सीमा तो केवल उन व्यक्ति-विशेष की अपनी सदिच्छा तक ही सीमित होती है। इस स्थल पर यह आवश्यक हो जाता है कि उनकी सदिच्छा को उनके सामने मूर्तिमान् कर उसे कार्य-रूप में परिणत कराने के लिये आग्रह किया जाय। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है, यह जो आग्रह किया जाता है, वह एक सत्य के निमित्त किसी असत्य का त्याग कराने के लिये किया जाता है—किसी व्यक्ति-विशेष के विरोध में नहीं। इसलिये यदि अब हम इसके कारण अपने व्यक्तिगत जीवन में कटुता का आविर्भाव कर लें, तो यह हमारी भूल है। हम जो आंदोलन कर रहे हैं अथवा इसके साधन-स्वरूप जो सत्याग्रह करते हैं, वह परदे के विरोध में, किसी व्यक्ति-विशेष के विरोध में नहीं। उनके मन के अंदर जो सत्य का भास हो रहा है, उसे उनके व्यावहारिक जीवन में अभिव्यक्त कराने के लिये ही सत्याग्रह किया जाता है। इसलिये आपस में किसी प्रकार की कटुता अथवा वैमनस्य नहीं उत्पन्न होना चाहिए। इस सत्याग्रह के विरोध में जो प्रदर्शन करते हैं, उनके लिये यह निश्चित है कि

वे वे ही लोग हैं, जो कभी खुले आम यह नहीं कह सकते—"परदा एक अच्छी प्रथा है, समाज में इसका होना जरूरी है।" इसी कसौटी पर यदि उन्हें कसकर देखें, तो विरोध की यथार्थता के हम अधिक निकट पहुँच सकेंगे।

सत्याग्रह की व्यापकता से यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है, हमारा उद्देश्य सत्य है, हमारे साधन प्रशस्त हैं, और वास्तव में हम समाज और युग की माँग पूरी कर रहे हैं। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना जरूरी है—जब हमने इस आंदोलन का रूप और प्रभाव देख लिया, तो जिन्हें पहले इसके असर और उपयोगिता में संशय था, उनके विचार भी बदल गए, तथा समाज में जो विचार-जागृति फैली, उससे आंदोलन की सफलता में कोई संदेह नहीं रहा। दूसरे किसी भी ढंग से इतना प्रचार-कार्य नहीं हो सकता था, यह क़रीब-क़रीब सभी ने स्वीकार किया है। सत्याग्रह से पूर्व वर और वधू के घरवालों से मिल एक शिष्ट-मंडल को उन्हें परदे का बहिष्कार कर विवाह के लिये समझाना चाहिए, यद्यपि अब समाज-सुधार के लिये सत्याग्रह-जैसे हथियार का केवल प्रचारात्मक दृष्टि से उपयोग कोई नई बात नहीं रही, क्योंकि पिछले कई इस प्रकार के अव-सरों पर इस बात के लिये कि समाज में परदा-प्रथा का रहना बुरा है, प्रायः समाज के सभी जिम्मेदार व्यक्तियों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकृति-सी मिल गई है। और, अब केवल समस्या है, तो इसे कार्यान्वित करने में एक प्रकार की झिझक

की—एक पुरानी रूढ़ि से मोह-त्याग की। इतना ही नहीं, वरन् परदा-प्रथा के निवारणार्थ संगठित रूप से सत्याग्रह का अवलंबन करने की व्यापकता ने अपने अनुमोदन की छाप भी लगा दी, जिससे हमारे नवयुवक सत्याग्रहियों का उत्साह और भी बढ़ा। आशा है, वे निर्दिष्ट दिशा-संकेत के अनुसार ही चल अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का पालन करेंगे।

उत्तरदायित्व की नैतिकता की दृष्टि से हमें यहाँ एक बात पर विचार और कर लेना चाहिए। किसी सत्य के अवलंबन का समय, काल और परिस्थितियों के अनुसार जितना हमें समर्थन और अनुमोदन प्राप्त होता है, उतना ही उन सत्यावलंबियों की जिम्मेदारी का दायरा विस्तृत होता जाता है। इन दोनो बातों का पारस्परिक सापेक्ष्य संबंध है। समाज में नारी-जागृति और उत्थान के लिये किए गए इन प्रयत्नों की अभी हाल में भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी नेहरू ने भी सराहना की है। यह सामाजिक क्रांति के लिये महान् गौरव और व्यापकता की बात है। किंतु, इसके साथ, इस उद्देश्य के लिये व्यवहृत हमारे साधकों के क्षेत्र, रूप, प्रणाली आदि के औचित्य की जिम्मेदारी भी बढ़ गई, जिसके क्रियात्मक भार का संबंध विशेष रूप से हमारे उन भाइयों से है, जो इन सत्याग्रहों में भाग लेंगे। इसलिये सत्याग्रहों में हमें इन सभी बातों को यथोचित महत्त्व देना है।

अब रही सफलता की बात, सो इसका प्रचारात्मक प्रभाव

समाज के युवक और युवतियों पर काफी व्यापक रूप से पड़ा है। सफलता की आशा का सबसे भारी प्रमाण तो यही है कि कितने समय से ये परदा-विरोधी आंदोलन लगातार चलते आ रहे हैं—समय पर अनवरत रूप से सत्याग्रह भी बराबर होते रहे हैं, किंतु अभी तक इससे कभी किसी प्रकार की अरुचि अथवा उदासीनता-जन्य तुष्टि का भाव हमारे अंदर नहीं आ पाया, और नित्य नए जोश, स्फूर्ति और जीवन के साथ इस मातृ-मुक्ति के महान् यज्ञ का हम निर्णय करते और इसे कार्यान्वित कर आगे बढ़ते हैं। यह हमारी प्रगति का जीवन-चिह्न है, और भावी सफलता का निश्चित लक्षण। इतना तो स्पष्ट है, अब आदेशों, सुझावों और भाषणों द्वारा समाज-सुधार का समय नहीं रहा, इसके लिये कुछ क्रियात्मक रूप से करना आवश्यक है। इसीलिये शुद्ध प्रचार और समाज-कल्याण की भावना से ही यह क़दम उठाना वांछनीय है। वह भी यह बात ध्यान में रखते कि प्रत्येक युद्ध तथा राजनीतिक क्रांति के पश्चात् सामाजिक क्रांति होती है। इन सभी दृष्टियों से हमें पूर्ण विश्वास रखना चाहिए कि हम ठीक मार्ग पर हैं, और हमारी सफलता अवश्यंभावी है।

चौदह

अपराधों का सामाजिक मनोविज्ञान

"मुझे अपने अपराधों पर अत्यधिक दुःख होता है। जब मुझे कुछ कृत्यों की याद आती है, तब मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। परंतु वे सब मुझे स्वाभाविक और सत्य ही प्रतीत होते हैं।" ये शब्द १६ वर्ष के विद्यार्थी विलियम हेरन ने, शिकागो की अदालत में, न्यायाधीश हेरल्डजी वार्ड के सम्मुख, कहे थे। उसे ६१ वर्ष की तीन सजाएँ दी गई थीं। उसने तीन हत्याओं के अतिरिक्त अनेक डकैतियाँ की थीं, हमले किए थे।

आपको अपराधी के कथन से संतोष न होगा, और उसके अपराधों की स्वाभाविकता तथा सत्यता पर विश्वास न होगा। किंतु इन्हीं शब्दों में उसकी प्रवृत्ति और परिस्थितियों को पहचानने का रहस्य छिपा है। उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमारी वाणी से आधारित प्रत्येक शब्द, व्यक्त या अव्यक्त, मन का प्रतिनिधित्व करता है।

हेरन कॉलेज के जीवन में बुद्धि-संपन्न विद्यार्थी था। बौद्धिक प्रवृत्तियों से स्नेह के साथ उसका अध्ययन भी विशद था। उसे मनोवैज्ञानिक तथा मानस-चिकित्सा-पद्धति आदि विषयों से अनुराग था। उसकी मेज़ पर फ्रायड और नीत्शे की किताबें रक्खी रहती थीं। यह सब होते हुए भी वह अपराधी था। उसकी बुद्धि पर इन ग्रंथों का प्रभाव न पड़ा। न-जाने किस भावना के वशीभूत हो वह ये अपराध करता और अपने कार्यों पर पश्चात्ताप करते भी उन्हें स्वाभाविक समझता था। निस्संदेह यह रहस्य और खोज की वस्तु है।

जब वह छोटा था, तब उसे स्त्रियों के 'अंडर-वीयर' से स्नेह था। कभी-कभी वह उन्हें पहना भी करता था। यह ९ वर्ष की बात है। परंतु इसके बाद उसने उक्त वस्त्र चुराने आरंभ कर दिए, और धीरे-धीरे उसे डाके मारने की आदत पड़ गई। वह लिखता है—"मुझे प्रतीत होता था, मैं बुरे मार्ग पर हूँ। इन डकैतियों से भी मुझे वासना की तृप्ति का आनंद आता था। मैंने कारण जानने का प्रयत्न किया। परिणामतः इस भावना का समाधान करने के लिये नियत समय पर लड़कियों से मिलना शुरू कर दिया, परंतु उनसे संतोष न हुआ, वे घृणास्पद लगने लगीं।"

वह अपनी समस्या सुलझा न सका। स्त्रियों के आंतरिक वस्त्रों के प्रति स्नेह की पूर्ति न हुई। इसी वस्त्र-प्राप्ति की भावना से वह डाके मारता था। प्रथम तीन प्रयत्नों में सफल होने पर

चौथे में पकड़ा गया। इस बार उसने तीन हत्याएँ की थीं। ६ वर्ष के बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर उसने नदी में फेंका था। कन्या ब्राउन पर गोली चलाई, और श्रीमती रोस की चाकू द्वारा हत्या की थी।

यह सत्य है, यौवन की इन प्रवृत्तियों का प्रमुख आधार काम की भावना होती है। वह भावना शैशव से आती और यौवन में स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। वर्तमान समय के मान्य चिकित्सक अलबर्ट मौलकारथान का कथन है—"सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है, यौवन के उदय से कलात्मक जीवन का प्रारंभ होता है, जिस अवस्था में स्त्रीत्व और पुरुषत्व की अभिव्यक्ति होती है। यौवन से पूर्व काल को बचपन की संज्ञा देते हैं। परंतु यह अवस्था का भेद उन चिह्नों से किया जाता है, जो यौवन के प्रारंभ में प्रकट होते हैं। यह असंतोष की बात है, विकास के इस दीर्घ काल की तरफ़ उचित ध्यान नहीं दिया जाता, जो उपयुक्त घटनाओं से पूर्ववर्ती होता है।"

वस्तुतः यह काम की भावना शैशव से ही बीज-रूप से विद्यमान होती है, और यौवन के समय स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से यौवन के बजाय शैशव का समय अधिक महत्त्व-पूर्ण है, क्योंकि इस समय अनेक अनुभवों के संस्कार हमारे अंतर् में सब जाते हैं, जो हमारी भावी प्रवृत्तियों को अज्ञात रूप से संचालित करते रहते हैं। हमारे स्वभाव तथा जीवन के दृष्टिकोण का निर्माण पर्याप्त अंशों में इसी अवस्था में हो जाता है।

फ्रायड की मानसिक चिकित्सा-पद्धति और निदान का आधार 'बचपन की काम-वृत्ति' ही है। वह लिखता है—"बचपन वस्तुतः वह अवस्था नहीं, जिसमें काम की भावना का स्थान न हो, यद्यपि प्रचलित विश्वास इसके विपरीत है। यह कथन सर्वथा असत्य है कि यौवन के प्रारंभ में ही काम-भावना का आविर्भाव होता है। जन्म से ही बच्चों के साथ यह भावना आती है। यौवन की काम-वृत्ति (या चिह्नों) के विकास के पूर्व अनेक स्थितियाँ आती हैं।" स्पष्टता के अभाव से हम उनसे अपरिचित हैं।

इस काल में अंतर्निहित काम की भावना अभिव्यक्ति के लिये प्रयत्न किया करती है, यद्यपि कुछ अवस्थाएँ छोड़ यह प्रकाशन प्रबल नहीं होता। जब इस लेख का नायक हेरन ६ वर्ष की अवस्था में था, तो उसका अनुचित दशा में विकास हो रहा था। अब उसे स्त्रियों के अतिरिक्त वस्त्रों से कामज सुख की अनुभूति होती थी। यही 'फीटिशिज्म' या संकेत-जन्य कामना का सिद्धांत है। इस स्थिति में मनुष्य वस्त्रों, बालों, जूतों आदि विभिन्न वस्तुओं द्वारा अपनी काम-वृत्ति की तृप्ति करता है। इसी प्रकार डॉ० अलबर्ट मौंट ने एक अन्य उदाहरण दिया है—इस दशा में आकर्षण के केंद्र उसके आंतरिक वस्त्र बन जाते हैं, और उनके अवलोकन-मात्र से उसकी कामना उत्तेजित होने लग जाती है।

युवकों को सामान्यतः दो अवस्थाओं में काम-तृप्ति की अनु-

भूति होती है। प्रथम को आत्मरति और द्वितीय को देहरति कह सकते हैं। क्रमशः मन तथा देह द्वारा काम की तृप्ति होती है। बच्चों की काम-संबंधी इंद्रियाँ विकसित नहीं होतीं, अतः उनकी काम-वृत्ति का क्षेत्र प्रथम अवस्था ही होती है। बच्चों की उदासी, अभाव की अनुभूति, वस्तु-विशेष से काम-वृद्धि, सौंदर्य ताकना तथा अपने को सुंदर एवं दर्शनीय बनाने की इच्छा उनकी कामना की विभिन्न स्थितियाँ हैं। शैशव में जिन वस्तुओं में विशेष 'मज़ा' आता है, वे हमें सांकेतिक रूप से काम-सुख देने लग जाती हैं। यदि हम हेरन के केस का सूक्ष्म अध्ययन करेंगे, तो हमें यही ज्ञात होगा कि जब वह छोटा था, तो उसकी माता या घर की किसी अन्य स्त्री के वस्त्रों का उसके मन पर चिरस्थायी प्रभाव पड़ा था। इसलिये वह वस्त्र उसकी काम-पूर्ति का उपादान बन जाता है।

वस्तु-जन्य कामोत्पत्ति की स्थिति प्रायः सामान्य 'रूप' से व्यतीत हो जाती है, और अत्यधिक मानसिक संघर्ष नहीं होता। परंतु हेरन के साथ यह अवस्था न घटी। वह अपनी तृप्ति के लिये अनुचित कर्मों (चोरी आदि) में प्रवृत्त हो जाता है, जो व्यक्ति और समाज के लिये अहितकर है। १३ वर्ष की आयु में, जब उसने चोरी-डाके प्रारंभ किए थे, उसे सुधारा जा सकता था, और वह उस मार्ग पर अग्रसर न होता, जिसके परिणाम-स्वरूप तीन हत्याएँ हुईं।

यह सत्य है, इन प्रवृत्तियों की चिकित्सा किन्हीं दवाइयों या

गोलियों से नहीं हो सकती। इसका उपाय 'मनोविश्लेषण' है। क्या हेरन का सुधार हो सकता था? हम इसका उत्तर देने में असमर्थ हैं। परंतु यदि उसके माता-पिता छोटी अवस्था में उसे मानसिक चिकित्सकों के पास ले जाते, तो ये भीषण परिणाम न उत्पन्न होते। काम के अपराधियों को ही इन कामों के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता, विद्यालय और समाज भी उनके निर्माण के प्रमुख साधन होने से दोष के भागी हैं। वांशिक गठन की 'सामाजिक स्वास्थ्य-संस्था' के डाइरेक्टर श्री रे एवरा ने इन कर्मों के लिये माता-पिता, धर्माधिकारी, अध्यापक आदि को उत्तरदायी कहा है। उनकी दृष्टि में विवाहोच्छेद, अनुचित संतानोत्पत्ति और कामजन्य व्याधियों की उत्पत्ति में वे ही कारण हैं। आजकल शारीरिक व्याधियों की तरह मानसिक विकारों को भी चिकित्सा का विषय समझा जाता है। परंतु 'काम-वृत्ति' से ग्रस्त अपराधियों को न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाता है, यह ठीक नहीं। उनका भी 'मनोविश्लेषण' आदि के द्वारा इलाज होना चाहिए। निःसंदेह मानव-समाज इस दिशा में पिछड़ा है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉक्टर बरट्राम पोलेन अपने ग्रंथ में लिखा है, इन अपराधियों को मानसिक चिकित्सा तथा सहयोगात्मक निरीक्षण द्वारा अनायास सुधारा जा सकता है। इनके लिये जेलों की जगह मानसिक अस्पताल होने चाहिए। स्वभाव या व्यवहार में परिवर्तन होने पर इन्हें छुट्टी कर

दिया जाना चाहिए। यदि बाहर जाने पर पुनः बुरे लक्षण प्रकट हों, तो दंड देने की जगह उन्हें फिर चिकित्सा-गृह में प्रविष्ट करवाया जाय। इन अपराधियों को अनियमित काल के लिये चिकित्सा-गृहों में रक्खा जाय। यदि उनका सुधार न हो, तो वे बाहर न जा सकें, जिससे समाज में अव्यवस्था न हो। माता-पिता का यह कर्तव्य है, बच्चों का सूक्ष्म निरीक्षण करें। किसी भी असाधारण व्यवहार के प्रकट होने पर विशेषज्ञों की सलाह लें। अत्यधिक संकोच या भय बच्चों की मानसिक बीमारियाँ हैं। इस संबंध में उपेक्षा न हो, अन्यथा उनका भविष्य न बन सकेगा।

आज आवश्यकता यह है कि इन अपराधियों को अदालत की जगह अस्पतालों का विषय समझा जाय। अखबारों में बड़े-बड़े अक्षरों में ऐसे समाचार देना उचित नहीं; क्योंकि यह भी संभव है, एक दिन आपके घर का सदस्य ही इन मनोविकारों का शिकार हो जाय। मानव-समाज का कर्तव्य है, वह इन अपराधों को सहानुभूति से देखे, और उन्हें दूर करने का सम्यक् प्रयत्न करे।

पंद्रह

सिने-व्यवसाय की सामाजिकता

भारत आज़ाद हो गया। प्रत्येक १५ अगस्त को आज़ादी की वर्ष-गाँठ हर्ष-पूर्वक मनाई जाती है। भारत-सरकार ने इन वर्षों में बहुत ही उपयोगी कार्य किए हैं। यद्यपि देश को विषम परिस्थितियों एवं कठिनाइयों से गुज़रना पड़ा, फिर भी देश के लिये सरकार ने लंबी-लंबी योजनाएँ बनाईं। बाँध-निर्माणों पर ही करोड़ों रुपए खर्च किए गए। इसी प्रकार सरकार हर क्षेत्र में उन्नति के हेतु क़दम उठा रही है।

हमें यहाँ देखना यह है, देश के संबंध में सरकार क्या करने जा रही है? सिनेमा और समाज का चोली-दामन का संबंध है। समाज-निर्माण में सिनेमा बहुत सहायक हो सकता है। हम सोवियट रूस या अन्य देशों की ओर आँख उठा देखें, उन देशों में सिनेमा का उपयोग किस प्रकार किया जाता और वह

कैसे समाज के एक लाभप्रद अंग का काम करता है। शिक्षा भी सिनेमा द्वारा दी जाती है। इस युग में, जब विज्ञान ने आश्चर्य-जनक प्रगति की है, विदेशों में सिने-व्यवसाय में भी बहुत प्रगति हुई है। इसे समाजोपयोगी बनाने का सफल-सिद्ध प्रयोग हुआ है।

अन्य देशों में सरकार यदि कोई योजना बनाती है, तो उस संबंध में एक फ़िल्म तैयार करा प्रदर्शित की जाती है। इससे जनता की सहानुभूति भी उसे मिलती है, जनता का संपर्क सीधे सरकार से हो जाता है। किंतु भारत में आज क्या हो रहा है ?

हमारे सम्मुख अनेक जटिल समस्याएँ उपस्थित हैं—शरणार्थियों की समस्या, मुद्रा-स्फीति, प्रांतीयता आदि। लेकिन क्या इन सबमें से किसी के संबंध में फ़िल्म-निर्माण कर उसकी बुराइयों या अच्छाइयों को तथा उसे दूर करने का मार्ग प्रदर्शित किया गया ? आज सरकार शरणार्थियों की सहायता के लिये अपील करती है, पर इससे अच्छा होता, वह इनकी समस्या पर एक फ़िल्म निर्मित कर प्रदर्शित करती, जनता की सहानुभूति स्वतः सरकार के साथ हो जाती, और जनता सहायता करने में पीछे न रहती। लेकिन भारत-सरकार ने ऐसा नहीं किया।

आज काश्मीर के लिये संघर्ष हो रहा है। मैं पूछना चाहूँगा, उस संघर्ष के दृश्य या उसकी बाबत हमलावरों की बर्बरता, लूट-मार के दृश्य-संबंधी कितने फ़िल्मों का निर्माण हुआ ? इससे काश्मीर के संबंध में जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त करने में

कठिनाई हुई। गत महायुद्ध में 'इनफ़ारमेशन न्यूज़' द्वारा जापानियों, जर्मनों की नृशंसता के दृश्य दिखा जनता का समर्थन प्राप्त करने का यत्न होता था। भारत-सरकार के महारथी कर्णधारों ने उससे भी शिक्षा न ली।

कहने का तात्पर्य यही कि एक तरफ़ करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं, तो दूसरी तरफ़ उस खर्च को उपयोगी बनाने एवं जनता को उसकी महत्ता तथा उपयोगिता समझाने का सरकार कोई भी प्रयत्न नहीं करती। भारत-सरकार ने सिनेमा से कुछ भी फ़ायदा नहीं उठाया, यह उसकी कमज़ोरी है या अनुभव-हीनता ?

भारत को आज़ादी प्राप्त होने से पूर्व अँगरेज़ साम्राज्यवादियों से यह आशा करना कि वे सिने-व्यवसाय को जन-जागरण का साधन बनने देंगे, निरी मूर्खता थी, क्योंकि उन्हें तो अपनी सत्ता बनाए रखना थी। जन-जागरण से सत्ता को खतरा था। इसीलिये निर्मित होनेवाले चित्रों में भूखे, नंगे मज़दूरों का असंतोष, मिल-मालिकों का अत्याचार, बंगाल का अकाल, ज़ुल्म आदि इसी प्रकार के दृश्य दिखाने पर प्रतिबंध लगा दिया था। ऐसा था वह ज़माना।

किंतु आज वह स्थिति नहीं। हम देखते हैं, आज भी 'वीणा,' 'प्यार की जीत,' 'साजन,' 'अनोखी अदा,' 'जंगल-गर्ल,' 'मेरी कहानी,' 'एक रोज' आदि-जैसे गंदे चित्रों का निर्माण ज़ोर-शोर से हो रहा है। मैं उन सभी दर्शकों से पूछूँगा, जिन्होंने ये चित्र

देखे हैं कि वे स्वयं अपने दिल पर हाथ रख सोचें, क्या इन चित्रों में हमारे देश की किसी भी समस्या का प्रदर्शन एवं उसके समाधान का मार्ग बताया गया है ? क्या इन चित्रों से हमें कोई शिक्षा मिल सकती है ? इन चित्रों के निर्माण में जो लाखों रुपया पानी की तरह बहाया गया, उसका लाखांश भी इस फ़िल्म से प्राप्त हो सकेगा ? उत्तर 'नहीं' के सिवा और कुछ नहीं मिलेगा।

जब ये चित्र पूर्णतः अनुपयोगी और असफल हैं, तो इस मुद्रा-स्फीति के युग में इनके निर्माण पर करोड़ों रुपए व्यय करने की सरकार ने क्यों अनुमति दी ? सेंशर-बोर्ड ने इनके प्रदर्शन की क्यों अनुमति दी ? मैं जन-जन से अनुरोध करूँगा, वह उल्लिखित चित्र देख और विचार कर हमारे कथन की सत्यता जाँचे। भारत-सरकार का इस पर विशेष ध्यान देना परमावश्यक है। इन चित्रों में एक बात देखने को अवश्य मिलती है, तिरंगा झंडा फहराते हैं, और आजादी के गाने भी गाए जाते हैं, लेकिन उन गानों की हत्या कर दी जाती है।

इन चित्र-निर्माताओं से अनुरोध है, समय रहते चेत जायँ। ब्रिटिश भारत का नक़्शा सामने न रक्खें। अब स्वतंत्र भारत—वह भारत, जो पूर्ण जाग्रत् है—का ध्यान रखकर चित्र-निर्माण करें। नहीं तो इनकी आर्थिक क्षति तो होगी ही, इनके विरुद्ध प्रदर्शन भी किया जायगा। भारत-सरकार से भी अनुरोध है, सिने-व्यवसाय की देख-रेख के लिये एक अलग-विभाग क़ायम करे, और उसमें

पूर्ण दक्ष, व्यवसाय-निपुण व्यक्तियों को रक्खे। इस विभाग में फ़िल्म और टेकनिक के जानकार व्यक्ति रक्खे जायँ, और फ़िल्म-निर्माण तथा प्रदर्शन-संबंधी सारी निगरानी इसी विभाग को करनी होगी। हाँ, इस विभाग में पूर्ण व्यावसायिक भावना-वाले व्यक्ति न रक्खे जायँ, जैसे जिनेवा-सम्मेलन में हवाई घोड़ा, तूफ़ान-मेल आदि के निर्माता श्री चंदूलाल शाह को भेज दिया गया था।

फ़िल्म-निर्माण तो देश की प्रत्येक समस्या पर हो सकता है। इससे सरकार और जनता में निकटता आएगी, और जनता सरकार की कठिनाइयाँ आदि सरलता से, अच्छी तरह, जान सकती है। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में लाखों शहीद हुए हैं। निर्माता उन पर चित्र-निर्माण की कल्पना भी नहीं कर रहे हैं। इन्हें तो 'अनोखी अदा' का निर्माण करना है। लेकिन अगर वे महानुभाव भगतसिंह, यतींद्रनाथ मुखर्जी, सुखदेव, चंद्रशेखर आज़ाद प्रभृति शहीदों के संबंध में यथोचित और प्रामाणिक चित्र-निर्माण करते, तो देश का हित होता, और व्यवसायियों का आर्थिक लाभ भी। लेकिन इन्हें तो इन सबका ज्ञान ही नहीं। स्वतंत्रता से कोसों दूर रहनेवाले (अधिकांश सिने-निर्माता ऐसे ही हैं) मूल्य क्या जानें इन शहीदों का। लेकिन अगर इन्हें जनता से 'पैसा' लेना है, तो उसके फ़ायदे की चीज़ दे ले सकते हैं, उसे मूर्ख बनाकर नहीं। यदि इसे निर्मातागण नहीं जानते, तो इन्हें जानना होगा। लेखकों से संबंध स्थापित

करना होगा। मेरठ, काकोरी, लाहौर षड्यंत्र तथा हजार बम-कांड-केसों के संबंध में अत्यंत अच्छे चित्र बनाए जा सकते हैं। जो हमारे निर्माता, निर्देशक इस ओर से उदासीन रहे हैं, उन्हें इस ओर ध्यान देना होगा। यही समय की पुकार है—युग ऐसी ही चीजें चाहता है।

कपड़ों तथा नग्न अंगों के प्रदर्शन का समय समाप्त हो गया। वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद में ही संभव था। स्वतंत्र भारत में इस प्रकार की हरकतों का विरोध होगा, और जनमत अपनी इच्छा के विपरीत कुछ भी सुनने को तैयार न होगा। चित्रों में प्रेम की हत्या करनेवालों को सजग हो जाना चाहिए। अब उन्हें वास्तविक सात्त्विक प्रेम का प्रदर्शन करना होगा—प्रेम के इस वासनामय नग्न रूप का नहीं। "गोरी, मुझसे गंगा के पार मिलना," "अँगड़ाई तेरी याद में आई—हरजाई" इत्यादि अश्लील गानों के लेखकों को यह चेतावनी है, वे अब सँभल जायँ, वरना उनके विरुद्ध उचित कार्यवाही की जायगी। हमारे सिने-व्यवसाय में साहित्यिक तो इने-गिने ही हैं। नैपाली, नरेंद्र, अमृतलाल नागर, व्रजेंद्रनाथ गौड़, प्रदीप आदि को छोड़ कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसे साहित्यिक कहें, क्योंकि साहित्य में उसका कुछ स्थान ही नहीं। अतः इस प्रकार के गानों और संवादों के लेखकों के विरुद्ध आवाज उठाई जायगी, और निर्माताओं को बाध्य हो साहित्यिकों की सहायता लेनी होगी। 'मधोक'-जैसे लेखकों की जरूरत सिने-व्यवसाय को नहीं।

यदि इन साहित्यिकों ने ऐसी चीज़ें दीं, तो इनके विरुद्ध कार्य-वाही की जायगी। साहित्यिकों की सहायता से इन निर्माताओं का भला हो सकता है, साथ ही देश का भी। लेकिन हाँ, उन पर प्रतिबंध न रक्खा जाय। अर्थात् ऑर्डर दे उनसे लिखने को न कहा जाय। वे जो दें, उसे यदि पसंद हो, तो आप ग्रहण करें। यही करने में हित है। वरना सिने-व्यवसाय की अवनति, जो आरंभ हो गई है, होती ही चली जायगी।

सोलह

अहिंसात्मक राजनीति

प्रगति के साथ संघर्ष लगे हैं। जब हम किसी मार्ग पर चलते हैं, तो हमारे पथ में अनेक बाधाएँ आती हैं, जिन्हें दूर किए बिना हम अपने उद्देश्य तक नहीं पहुँच पाते। उद्देश्य-प्राप्ति की भावना की पृष्ठ-भूमि वे विचार होते हैं, जो हमारे जीवन को सुख प्रदान कर सकते हैं, अथवा जिनसे हमें मानसिक सुख और संतोष की उपलब्धि होती है।

जब तक हमें अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती, तब तक हमारे मन में चिंताओं का चक्र चलता रहता है। सुखद परिणामों को शीघ्र पाने की इच्छा से हमारे हृदय में एक विशेष प्रकार की उत्सुकता छा जाती है, और हम अपने कार्यों के प्रति सजग हो जाते हैं। इस स्थिति में मनुष्य भावनाओं के प्रभाव में अधिक होता है, और कभी-कभी तो उनके प्रभाव में अपनी विवेक-बुद्धि भी भूल जाता है।

जब हम कोई मार्ग बनाते हैं, तो पहले उसका नक़शा तैयार कर लेते हैं। उसके निर्माण में कितना समय और धन लगेगा, इन बातों को अपनी ओर से सोच लेते हैं। परंतु जब हम कार्य करते हैं, तो सर्वथा वे ही परिस्थितियाँ प्राप्त नहीं हो पातीं, जिन्हें हम अनुमान लगाते सोचते हैं। तब हमें उन नवीन परिस्थितियों के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है। यह अवस्था हमारे कार्य-मार्ग की विषम स्थिति होती है। इसमें सफलता पाना ही कार्य-कुशलता है।

कुछ वर्ष पूर्व हमारा देश स्वराज्य-प्राप्ति के संघर्ष में लगा था। तब जनता यह सोचती थी, स्वाधीन होने पर हमें नाना प्रकार की सुविधाएँ मिलेंगी, और उसका जीवन अधिक सुखी हो सकेगा। यही भावना भारत की जनता और नेताओं के हृदय में थी। इसलिये उन्होंने स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये नाना मार्गों का अवलंबन किया। मार्गों की भिन्नता का हेतु वह मानवीय बुद्धि है, जो मनुष्य की भावनाओं के साथ अपने मार्ग का अन्वेषण करती है। इसमें संदेह नहीं, हमारी रुचियों में अत्यधिक भिन्नता होती है।

सरल, सहनशील तथा शांत व्यक्तियों ने स्थितप्रज्ञता साथ रखते अपने मार्ग का निर्माण किया। इसी प्रकार उत्सुक, असहनशील तथा उग्र लोगों ने अपने स्वभाव के अनुकूल दूसरा क्रांतिवाद का मार्ग पकड़ा। यद्यपि यह सत्य है, दोनो पक्षों की भावना और उद्देश्य एक था, परंतु विधियों की एकता

न होने से वे एक ही उद्देश्य के लिये मिलकर कार्य न कर सके। एक दल ने दूसरे दल को हेय समझा। अपने मार्ग को श्रेष्ठ समझते दूसरे की उपेक्षा तथा भर्त्सना की।

इस अवस्था में विचारणीय हो जाता है, उनमें कौन-सा मार्ग ठीक है। हम निर्णय के लिये इतिहास, आचार-शास्त्र आदि को प्रमाण मान सकते हैं। परंतु उनसे भी अधिक अच्छा यह होगा, हम अपनी सहज विवेक-बुद्धि से कार्य करें, क्योंकि हमारे मन की पूर्ण तुष्टि तभी संभव है। इतना तो स्पष्ट है, जब मनुष्य उत्सुकता, उग्रता, शीघ्रता आदि भावनाओं के वशीभूत होता है, तो उनसे उसकी निर्णायक बुद्धि आवृत होती है। वह अपने पक्ष के साथ दूसरे पक्ष को भूल जाता है। फल-प्राप्ति के प्रलोभन से अनुचित विधियाँ भी प्रयोग में लाना चाहता है। तब उसके हृदय में भस्मसात् करनेवाली आग होती है, परंतु आग बुझानेवाला पानी नहीं होता।

द्वितीय पक्ष के क्रांतिवादी नेताओं और जनता के प्रति हमारी सहानुभूति न हो, यह सत्य नहीं। हम स्वर्गीय चंद्रशेखर आज़ाद की त्याग-भावना और बलिदान के सदैव पुजारी रहेंगे। उन्होंने जो मार्ग सत्य समझा, उस पर चलने में कोई कसर न रक्खी। उन्होंने राष्ट्रीय जीवन में चेतना लाने के लिये अनेक कार्य किए। इसमें संदेह नहीं, उनकी कर्तव्य-भावना और लगन हमें जीवन-संग्राम में दिव्य ज्योति दिखाती रहेगी।

हमें उन अमर शहीदों से त्याग और बलिदान की भावनाएँ

ले अपने पथ पर अग्रसर होना होगा। परंतु साथ ही उस विवेक-बुद्धि और दूरदर्शिता की उपेक्षा न करनी होगी, जो शांतिमय उपायों के साथ रहती है। हमारे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि हम हिंसात्मक प्रयत्नों को सदैव हेय समझते हैं। परतु इतना सत्य है, यदि अहिंसात्मक विधियों से कार्य हो सके, तो हिंसा और विनाश का मार्ग कोई भी व्यक्ति मान्य न कहेगा।

निर्माण का आधार सृजन की भावना ही हो सकती है, परंतु कभी-कभी हमें विनाश को भी उपयोग में लाना पड़ता है। अन्यथा हमारी आत्मारक्षा संभव नहीं होती। जब माली किसी क्यारी में फूलों के पौधे बोता है, तो उसे क्यारी की भूमि ठीक बनानी होती है।

हमें स्वाधीनता की नवीन भूमि प्राप्त हुई है। फल-फूलों की प्राप्ति के लिये अनेक शुभ योजनाओं और कार्य-क्रमों के बीज बोने पड़ेंगे। हमारे देश के नेता माली होंगे। परंतु जनता को भूमि सुधारने में सहयोग देना होगा। देश में विभिन्न राजनीतिक दल, क्यारी के भिन्न-भिन्न [illegible] की तरह, अपनी वृद्धि के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। परंतु उन्हें इतना संकुचित और विरोधी गुणों से संपन्न न होना चाहिए, जिससे सबकी प्रगति रुक जाय। देश में घास की तरह अनेक दल हैं—सांप्रदायिकता-प्रचारक, चोर-बाजारी के आश्रयदाता और निर्माणात्मक प्रयत्नों में बाधा पहुँचानेवाले तथा कथित साम्यवादी आदि। जब तक हमारे

देश में इनका साम्राज्य रहेगा, तब तक किसी प्रकार की उन्नति हो सकेगी, इसकी आशा नहीं की जा सकती।

नीति का प्रश्न सरकार का विषय है। परंतु परिस्थिति आने पर हमें भी उसके लिये सक्रिय सहयोग देना पड़ेगा। उस समय यदि हमारी आंतरिक स्थितियाँ ही ठीक न होंगी, तो हमारे सम्मुख अत्यधिक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायँगी। इस समय जनता का इतना ही कर्तव्य है, वह सरकार की आलोचनाएँ करने के बजाय देश के निर्माण में अत्यधिक प्रगतिशील रहे।

हमारी सरकार की यह नीति रही है, यथासंभव अहिंसात्मक विधियों का ही प्रयोग किया जाय, और इसलिये वह शत्रु को भी अवसर देती है, वह भूलों से बच सन्मार्ग पर आ सके।

आज हमारी सरकार को कोई भी क़दम उठाने से पूर्व उसके आधारों का स्पष्टीकरण करना होगा। परंतु राष्ट्रीय सरकार अपने प्रयत्नों में जितनी सजग है, उनके स्पष्टीकरण और प्रकाशन में उतनी नहीं। इन समस्याओं का हल किस प्रकार हो सकता है, यह हमारे नेताओं को गंभीरता-पूर्वक सोचना पड़ेगा। इसके साथ जनता का यह परम कर्तव्य है, वह सरकार को सहयोग देने में तनिक भी प्रमाद न करे।

सत्रह

दक्षिणी आफ्रिका में भारतीयों की समस्या

दक्षिणी आफ्रिका में रंग-भेद की समस्या अति प्राचीन है। सन् १८६० के लगभग वहाँ भारतीयों का जाना आरंभ हुआ। ब्रिटिश सरकार ने भारत-सरकार (यहाँ भी अँगरेजों का शासन था।) से अपने दक्षिणी आफ्रिका के उपनिवेश में भारतीयों को भेजने का अनुरोध किया, जिससे वह ऊसर, निर्जन देश आबाद हो जाय। इसलिये दोनो सरकारों में संधि हुई। उस समय केवल केप कालोनी थी, जहाँ एक अँगरेज गवर्नर रहता था। उसने इँगलैंड की सम्राज्ञी की ओर से प्रवासी भारतीयों के संबंध में निम्न-लिखित घोषणा की थी—

"सम्राज्ञी की सरकार, क़ानून की दृष्टि से, रंग, उत्पत्ति, भाषा या धर्म का कोई भेद-भाव नहीं करेगी, बल्कि क़ानून का वास्त-

विक लाभ निष्पक्ष भाव से सबको समान रूप से होगा। सब समान रूप से क़ानून का उपयोग कर सकेंगे।"

भारत से लोग पर्याप्त संख्या में दक्षिणी आफ्रिका जाने लगे। वहाँ विभिन्न भागों में वे फैल गए। इस प्रकार २० वर्ष तक यही क्रम चलता रहा। भारतीयों ने अपने निरंतर एवं अथक श्रम से इस ऊसर-बंजर एवं निर्जन प्रदेश को सरसब्ज बना दिया। अब संपूर्ण दक्षिणी आफ्रिका पर अँगरेजों का आधिपत्य हो गया था। योरप-निवासी भी यहाँ आकर बसने लगे थे।

इन योरप-निवासियों के आते ही यहाँ रंग-भेद की भावना तीव्र रूप से फैल गई। इन्होंने एशिया-निवासियों के विरुद्ध आंदोलन आरंभ किया। सरकार इनकी थी ही! उसकी सहायता से भारतीयों को योरपियनों ने सभी सुविधाओं से वंचित करा दिया। एशिया-वासियों को व्यापार करने, संपत्ति रखने और ख़रीदने का अधिकार प्राप्त नहीं हो सका।

इसी समय से भारतीयों की कठिनाइयों का श्रीगणेश होता है। राष्ट्र-पिता स्व० महात्मा गांधी भी इस समय दक्षिणी आफ्रिका में थे। उन्होंने इन अन्यायों के विरुद्ध सत्याग्रह किया। पूज्य महात्माजी को पर्याप्त सफलता भी मिली। 'गांधी-स्मट्स-समझौता' हुआ। इस समझौते से भारतीयों की तात्कालिक कठिनाइयाँ दूर हो गईं। साथ ही इतर भारतीयों का आगमन रोक भी दिया गया। इस समझौते से भारतीयों को यह उम्मीद

थी; उन्हें दक्षिणी आफ्रिका की आबादी का अंश मान लिया जायगा। उन्हें नागरिकता के अधिकार भी मिल जायँगे।

सन् १९१३ में दक्षिणी आफ्रिका उपनिवेश नहीं रहा। वह ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल का एक स्वतंत्र सदस्य बना। इसके प्रधान मंत्री जनरल स्मट्स थे। प्रथम महायुद्ध में भारत ने मित्र राष्ट्रों का साथ दिया। भारतीयों की बहादुरी का लोहा सबने मान लिया। विजय मित्र राष्ट्रों की हुई, लेकिन भारत को कुछ भी न मिला।

युद्ध समाप्त होते ही अँगरेजों ने अपने सारे वायदों को ताक़ पर रख दिया। दक्षिणी आफ्रिका में रंग-भेद के आंदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। फलतः ट्रांसवाल में पृथक्करण-क़ानून पास हो लागू हो गया। इससे भारतीयों में गहरा असंतोष फैला। दक्षिणी आफ्रिका में वैधानिक एवं नागरिक अधिकार पाने के लिये भारतीयों ने आंदोलन किया।

केपटाउन-समझौता—भारतीयों के प्रबल विरोध से यूनियन-सरकार को अपना निर्णय बदलना पड़ा, और सन् १९२७ में भारतीयों से एक समझौता हुआ। इस समझौते को 'केपटाउन-समझौता' कहा जाता है। १९३२ में इसकी पुष्टि भी की गई। तब से इसे रद्द नहीं किया गया। हम यहाँ उस समझौते को संक्षेप में दे रहे हैं।

(१) दक्षिणी आफ्रिका के लिये इस अधिकार को मान

(२) जो भारतीय यूनियन में बस गए हैं, और पाश्चात्य ढंग का रहन-सहन अपनाने को तैयार हैं, उन्हें ऐसा करने का पूरा अधिकार दिया जाना चाहिए।

(३) जो भारतीय भारत या उन देशों को जाना चाहें, जहाँ पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन की आवश्यकता न समझी जाती हो, उन्हें ऐसा करने के लिये सहायता दी जानी चाहिए।

(४) यूनियन-सरकार ने उन भारतीयों की उन्नति के लिये क्रियात्मक उपायों से काम लेने का दायित्व अपने ऊपर लिया है, जो स्थायी जन-संख्या के अंग के रूप में यहाँ रह गए हैं।

(५) दोनो सरकारों ने यह समझौता किया कि वे यह देखते रहेंगे कि किस तरह इस समझौते पर अमल किया जाता है, और अनुभव के आधार पर यदि किसी परिवर्तन की आवश्यकता हुई, तो इसके संबंध में विचार का आदान-प्रदान करेंगे।

(६) यूनियन-सरकार ने भारत-सरकार से एक एजेंट नियुक्त करने के लिये निवेदन किया, जो दोनो सरकारों में निरंतर और प्रभाव-पूर्ण सहयोग क़ायम रख सके।

(७) एशिया-वासियों के पृथक्करण के लिये जो-जो वर्ग-क्षेत्र या बिल पेश हैं, उन्हें क़ानूनी रूप न दिया जाय।

यह समझौता दोनो देशों की सरकारों ने मान लिया, और अपनी-अपनी व्यवस्थापिका सभाओं में इसकी घोषणा भी कर दी।

'पेकिंग' अर्थात् बद्ध स्थान-क़ानून—इतना सब कुछ हो जाने पर भी गोरों को होश न आया। वे शक्ति के मद

में मदांध थे। १६४३ में उन्होंने पैकिंग-क़ानून पास ही कर दिया। इस क़ानून से एशिया-निवासियों के भूमि-संबंधी अधिकारों पर, पहली बार प्रत्यक्ष रूप से, प्रतिबंध लगाया गया। भारतीयों ने जोरदार विरोध किया। स्मट्स-सरकार को चुप्पी साधते देख भारतीयों ने सत्याग्रह आरंभ किया। अपने ही नागरिकों से समझौता करना दुराग्रही स्मट्स-सरकार ने अस्वीकार कर दिया। ये भारतीय क़ानूनन् नागरिकता के अधिकार प्राप्त कर चुके थे। जिन भारतीयों का जन्म-पालन-पोषण वहीं हुआ हो, और जिन्होंने अपनी आयु वहीं के सामाजिक, राजनीतिक एवं व्यापारिक उन्नति में ही लगाई हो, उन्हें नागरिकता के अधिकार से वंचित करना अन्याय है—संयुक्त राष्ट्र-संघ की घोषणा के विरुद्ध है।

छुतिहा क़ानून—स्मट्स तथा उसके गोरे सैनिकों का सन बढ़ गया। उन्होंने अभी पैकिंग क़ानून बनाया ही था कि सन् १६४३ में घेट्टो-ऐक्ट या छुतिहा क़ानून बना डाला। इसके अनुसार एशियाई भू-संपत्ति तथा भारतीय प्रतिनिधित्व को सर्वथा समाप्त कर दिया गया। फल-स्वरूप एशिया-वासियों का विकास, व्यापार तथा सामाजिक मामले सर्वथा अन्य लोगों से पृथक् हो गए। इस क़ानून को छुतिहा क़ानून कहा जाता है। यूनियन-सरकार ने अल्पसंख्यकों की समस्या के समाधान के लिये इसे ही एकमात्र मार्ग बताया है।

यूनियन-सरकार के इस भारत-विरोधी प्रचार एवं कार्य से

तंग आ भारत-सरकार ने आफ्रिका से १९४४ से ही व्यापारिक संबंध-विच्छेद कर लिया। हाईकमिश्नर को भी बुला लिया गया।

यूनियन-सरकार पर मुक़दमा—भारत-सरकार ने लाख यत्न किया, किंतु सब बेकार! भारतीयों की स्थिति ज्यों-की-त्यों रही। अतः लाचार हो भारत-सरकार ने इस प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र-संघ की वैधानिक एवं राजनीतिक समिति में रक्खा। दक्षिणी आफ्रिका की सरकार घरेलू मामला कह इस मामले को राष्ट्र-संघ में जाने देना चाहती थी। लेकिन श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने स्मट्स-सरकार को करारी हार दी।

उसके बाद आज भी मामला राष्ट्र-संघ में खटाई में पड़ा है। राष्ट्र-संघ में गोरे साम्राज्यवादियों का अत्यधिक बहुमत है। अतः वे ऐसे मामले यथाशक्ति दबाने का प्रयत्न करते हैं। जनरल स्मट्स ने भारत-सरकार से बातचीत करना भी गुनाह समझा। राष्ट्र-संघ (अँगरेज अमेरिकनों की पिट्ठू) संस्था ने इसके विरुद्ध कुछ भी नहीं किया। राष्ट्र-संघ में अपने विपरीत कोई भी बात ये अँगरेज और अमेरिकन पास नहीं होने देते, क्योंकि इनके पिट्ठू ही उसमें भरे पड़े हैं।

भू-संपत्ति क़ानून अब नेटाल में भी लागू होगा। नेटाल में भारतीयों की अधिक संख्या है। यूनियन-सरकार मनमानी करती ही जा रही है।

छोटे मियाँ सुभान अल्ला—स्मट्स निर्वाचन में हार गया।

डॉ० मलान प्रधान मंत्री हुए। लेकिन वह भी पूरे गुरु घंटाल ही रहे। जनरल स्मट्स की नीति पर जॉर्ज बर्नार्ड शा ने एक बार कहा था—"स्मट्स की नीति गोरी जातियों के लिये भी ख़तरनाक है।" महात्माजी ने जनरल से त्याग-पत्र देने की माँग की थी।

स्मट्स हारकर ब्रिटेन भाग गए। डॉ० मलान गद्दी पर आए। प्रधान मंत्री के रूप में बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्ला! यह स्मट्स से भी बढ़कर भारतीयों से घृणा करनेवाले प्रतीत हुए। इनके भाषण चुनौती की तरह होते थे। मलान भी स्मट्स की परंपरा को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहे।

तो फिर हम क्या करें। ऐसी परिस्थितियों में हमें अर्थात् हमारी सरकार को यह करना वांछनीय है—

(१) राष्ट्र-संघ पर दबाव डाल मामले का निबटारा जल्दी कराएँ, और गड़बड़ी होने पर राष्ट्र-संघ का पूर्ण बहिष्कार करें।

(२) ब्रिटिश सरकार को चेतावनी देते मामला निबटाने के लिये भारत-सरकार कहे, और ढिलाई होने पर ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल से संबंध विच्छेद कर दे।

उपर्युक्त दोनो मार्गों का अवलंबन करने का अवसर अभी तक नहीं आया। किंतु यही एकमात्र ज़रिया है, वरना हमारे भाई इसी तरह कष्ट में रहेंगे ही।

अठारह

काश्मीर की समस्या—उसका अंतरराष्ट्रीय महत्त्व

अब भारत स्वाधीन हो गया । उसके सामने नई-नई समस्याएं उपस्थित हो रही हैं। राज्य-पुनर्गठन और काश्मीर के प्रश्न उसे हल करने हैं। हमारे अधिकारियों का उत्तरदायित्व बढ़ गया है। जनता भी देश का भविष्य सतर्कता से देख रही है। आज नई परिस्थितियाँ और नए कर्तव्य हैं। हमें सजग रूप से उन विकट परिस्थितियों का मुक़ाबला करना होगा। हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

आज सभी भारतीय काश्मीर के विषय में चिंतित हैं। वे सोचते हैं, यदि वहाँ जन-गणना हुई, तो क्या परिणाम होगा ? यही प्रश्न काश्मीर और जम्मू की जनता के सम्मुख गंभीर रूप धारण कर रहा है। यदि वहाँ की जन-संख्या, भावनाओं और आशंकाओं का विश्लेषण किया जाय, तो इस समस्या के गूढ़ तथ्य का आभास मिल जायगा।

जब साधारणतया यह स्वीकार किया जाता है, काश्मीर की ग़ैर-मुस्लिम आबादी राज्य के हिंद-यूनियन में मिलाए जाने के पक्ष में है, तब यह भी आवश्यक है, वहाँ की पंजाबी और काश्मीरी-भाषा-भाषी मुस्लिम जनता के संबंध में भी अलग-अलग विचार किया जाय।

काश्मीर-राज्य की ४० लाख की आबादी में से लगभग १७ लाख, ५० हजार पंजाबी बोलनेवाले हैं। १३ लाख, २० हजार ग़ैर-मुसलमान हैं। यह आबादी काश्मीर में ज्यों-की-त्यों नहीं रह गई है। पिछली उथल-पुथल में जो क्षति हुई है, उसके संबंध में मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम, दोनो ने ख़ूब बढ़ा-चढ़ा वक्तव्य दिए हैं। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है, वहाँ के हिंदू-मुसलमानों और सिखों ने थोड़ी संख्या में अपना घर-बार छोड़ हिंद और पाकिस्तान में शरण ली है। स्थानीय जाँच से पता लगता है, मृत और स्थानांतरित आबादी का जोड़ लगभग ४ लाख होगा, जिसमें से आधी-आधी संख्या दोनो की समझनी चाहिए।

मुसलमानों के जो जत्थे पाकिस्तान भाग गए हैं, वे अवश्य ही पंजाबी मुसलमान हैं। इस प्रकार काश्मीर की वर्तमान आबादी में १५ लाख, ५० हजार पंजाबी, १३ लाख, ३० हजार काश्मीरी मुसलमान और ७ लाख, २२ हजार ग़ैर-मुसलमान बच गए हैं। कम ही लोगों को इस बात का संदेह है कि पंजाबी मुसलमानों की यह पूरी आबादी पाकिस्तान राज्य में सम्मिलित

होने का समर्थन न करेगी, यद्यपि नेशनल कॉनफ्रेंस के कुछ नेताओं का दावा है, पंजाबी मुसलमानों में भी उनके समर्थकों की संख्या एकदम तुच्छ नहीं है। यदि यह मान लिया जाय, काश्मीर की सभी ग़ैर-मुस्लिम आबादी काश्मीर-राज्य को हिंद-यूनियन में लाना चाहती है, तो यदि काश्मीरी मुसलमानों का ७० प्रतिशत समूह भी उनका साथ दे, तो काश्मीर हिंद का अंग पूर्ण रूप से बन जायगा।

गणना के इस आधार पर स्थिति अत्यंत सरल और साधारण प्रतीत होती है। पर घटनाओं के विकास के लिये कुछ अन्य तथ्य भी अपना प्रभाव डाल रहे हैं। काश्मीर के संबंध में सुरक्षा-समिति के वर्तमान प्रस्ताव और हिंद अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित होने के निर्णय के लिये जन-मत-गणना का आवश्यक होना ग़ैर-मुसलमानों के हृदयों में बेचैनी पैदा कर रहा है। इसमें किसी प्रकार कोई संदेह न करना चाहिए, ग़ैर-मुसलमानों में साहस और सुरक्षा की भावना का मूल आधार काश्मीर में हिंद-सेना की उपस्थिति ही है। इससे यह न समझना चाहिए कि इन लोगों को विरोधियों से भय है, या उनके द्वारा किसी खतरे की आशंका है। किंतु सेना के प्रति तो उनके हृदय में कृतज्ञता का ही भाव है, क्योंकि उसकी अनुपस्थिति में गत ऑक्टोबर-नवंबर में उनकी जान-माल की रक्षा असंभव हो जाती, जब आक्रमणकारियों से श्रीनगर को भी हर क्षण खतरा था। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है, यहाँ का कोई ग़ैर-मुसलमान

यह सोच भी नहीं सकता कि काश्मीर से हिंद-सेना हट जाने पर भी यहाँ शांति बनी रह सकेगी। कभी ऐसी स्थिति आ ही जाय, तो अधिकांश ग़ैर-मुसलमान उसी सेना के साथ हिंद चले जाना स्वीकार करेंगे। दूसरी ओर यह निश्चित करना भी कठिन हो रहा है, काश्मीरी मुसलमानों की विचार-धारा आजकल किस ओर है ?

तथाकथित आज़ाद काश्मीर-सरकार भी भरपूर प्रचार कर रही है, मुसलमान हिंद में किसी प्रकार भी सुरक्षित नहीं रह सकते, और यदि काश्मीर हिंद में सम्मिलित होना स्वीकार कर लेगा, तो भी काश्मीरी मुसलमानों का पूर्वी पंजाब में होकर आवागमन ज़रा भी सुरक्षित न होगा। पूर्वी पंजाब के ग़ैर-मुसलमानों के प्रति भाव और व्यवहार काश्मीर के हिंद में सम्मिलित होने के प्रश्न पर महत्त्व-पूर्ण प्रभाव डालेगा। मत-गणना का प्रश्न किस रूप में जनता के सम्मुख उपस्थित किया जायगा, इसका प्रभाव भी इस पर कम न पड़ेगा। कुछ क्षेत्रों में यह भावना भी काम कर रही है कि काश्मीर के सम्मुख केवल हिंद या पाकिस्तान में सम्मिलित होने के प्रश्न तक ही मत-दान सीमित न रख उसे स्वतंत्र काश्मीर पर भी मत देने की स्वतंत्रता हो।

कबाइली पहाड़ों में रहते हैं। यह स्पष्ट है, वे खेती से निर्वाह नहीं कर सकते। वहाँ उद्योग और शिक्षा नहीं। ब्रिटिश सरकार उन्हें रिश्वत के रूप में रुपया देती थी। पाकिस्तान रुपया देने में असमर्थ है। सैकड़ों मील तक पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा

काश्मीर के राज्य से मिलती है। अतः उसने कवाइलियों को लूट के लिये काश्मीर की तरफ़ प्रेरित कर दिया। इसलिये पृथ्वी का स्वर्ग और उसके साधन हड़पने की आकांक्षा से उसने कवाइलियों को मदद दी। काश्मीर में पचम दस्तों को खड़ा किया गया। काश्मीर की सीमा रूस, चीन, तिब्बत और अफ़ग़ानिस्तान से मिलती है, और अमेरिकन-ब्रिटिश साम्राज्यशाही काश्मीर को भारत के बजाय पाकिस्तान के प्रभाव में रखने में अपना स्वार्थ मानती है। अतः संयुक्त राष्ट्र-संघ की सुरक्षा-समिति में इन साम्राज्यशाहों ने काश्मीर का प्रश्न उलझा दिया। पर हड़पने की पाकिस्तानी नीति और संयुक्त समिति-संघ में चलाए गए षड्यंत्र काश्मीर की जनता के मनोभाव नहीं बदल सकते। काश्मीरी जनता का निश्चय राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जन-तंत्र निर्माण करने और भारतीय राष्ट्रीयता के साथ रहने का है। शेरे-काश्मीर की स्पष्ट घोषणा है, आज़ादी-पसंद जनता पशु-बल और १०,००० मील पर किए गए षड्यंत्रों के आगे नहीं झुकेगी। इसलिये उन्होंने सुरक्षा-समिति के आयोग्य-प्रस्ताव को ठुकरा दिया। वैधानिक बारीकियों के अध्ययन से पता चलता है, सुरक्षा-परिषद् के पाँच स्थायी सदस्य एक-मत हों, तभी कोई निर्णय कार्यान्वित किया जा सकता है। काश्मीर के मामले में एक साथी राष्ट्र तटस्थ है। सुरक्षा-परिषद् का प्रस्ताव सिफ़ारिश-मात्र है। वह बंधनकारक नहीं। अतः काश्मीर की स्थिति पर वही भ्रम नहीं होना चाहिए। यह आशा-पूर्ण वातावरण स्थिर

रखने के लिये भारतीय जनता को अपना कर्तव्य पूर्णतया निभाना चाहिए, अर्थात् उसे अपने देश में शांति रखनी चाहिए। काश्मीर की उद्योग-वृद्धि के साथ वहाँ की जनता से सद्भावना स्थापित करनी चाहिए। प्रधान मंत्री पं० नेहरू ने काश्मीर-राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा था—भारतीय विधान में हिंदू-मुस्लिम-जाति-भेद न किया जायगा; उसमें मनु और क़ुरान के विधानों का स्थान न होगा, प्रत्युत नागरिक अधिकारों की रक्षा करते राष्ट्र को उच्च बनाने का प्रयत्न किया जायगा। क्या पाकिस्तान के अधिकारी क़ुरानी नीति छोड़ पंडित नेहरू की तरह उदारता का प्रदर्शन करेंगे? यदि पाकिस्तानी सरकार प्रजातंत्रता और मानवता की उपेक्षा न कर अपना कर्तव्य निभाएगी, तो हमें विश्वास है, काश्मीर की समस्या अनायास ही सुलझ जायगी—हिंदू-मुस्लिमों की विषमता दूर हो जायगी, और दोनो राष्ट्र पारस्परिक सहयोग से फल-फूल सकेंगे।

उन्नीस

अवांछनीय प्रांतीयता

किसी भी राष्ट्र के नव-निर्माण के लिये एकीकरण की आवश्यकता पड़ती है। भाषा, भाव और वेष की एकता राष्ट्र की एकता के लिये आवश्यक गुण समझे जाते हैं। परंतु यदि प्रांतीयता का अवगुण प्रश्रय पाता रहा, तो एक भाषा, एक राष्ट्रीय भावना और एक राष्ट्रीय वेष-भूषा का विकास नहीं हो सकता। तात्पर्य यह, प्रांतीयता राष्ट्र की एक भावना के विकास में बाधक है। इसकी भावना संकुचित स्वार्थ की ओर मानवों को घसीट ले जाती है। इसके कारण राष्ट्र का पतन ही संभव है। भारत-राष्ट्र का तो अभी पुनर्निर्माण हो रहा है, अतएव भारत के लिये तो यह प्रांतीयता की भावना अत्यंत घातक है। इसके चक्र में यदि भारतीय पड़ेंगे, तो कभी उन्नति न कर सकेंगे। भारत में सैकड़ों संप्रदाय हैं, और अनेक भाषाएँ,

जिनके आधार पर प्रांतीयता के संकुचित क्षेत्र निर्मित होते हैं। सभी प्रांत प्रभुता चाहते हैं। किसके-किसके मन की की जाय ? ढील देने से अनर्थ के अतिरिक्त और क्या फल प्राप्त हो सकता है ?

हम सबको महसूस करना है, हम भारत-वासी सर्वप्रथम हैं, इसके बाद कोई प्रांत-निवासी। प्रत्येक प्रश्न पर हमें इसी दृष्टि-कोण से विचार करना है। संकुचित स्वार्थों को प्रश्रय देने के कारण ही भारत की केंद्रीय राजशक्ति नष्ट हुई, और एक सहस्र वर्ष तक भारतीय पराधीन बने रहे। इस अवधि में विदेशियों ने भारत का अत्यधिक शोषण और विनास किया। यह निश्चय है, भारत में संकुचित भावना के कारण ही फूट पड़ी और विदेशियों का पदार्पण हुआ था। विदेशियों ने यहीं के लोगों में फूट डाल स्वार्थ की सिद्धि की, और भारतीयों को परस्पर लड़ाया। कांग्रेस ने यह संकुचित भावना और फूट दूर करने का कार्य उठाया है, यह हमें स्मरण रखना चाहिए। प्रांतीयता की भावना इस समय बलवान् है। इसका दमन आवश्यक है।

प्रांतीयता की भावना का आधार होती है ग़लतफ़हमी, जो मानव को, विशेषतः भावुक-स्वभाव मानव को, पारस्परिक भेद-भाव और कटुता की ओर ले जाती है, जिससे वह एक वस्तु को उचित रूप में न समझ ग़लत समझता है।

इतना तो सत्य है, इस प्रकार की स्थिति कुछ ग़ैर-जिम्मेदार व्यक्ति, निजी स्वार्थों के वशीभूत हो, पैदा करते हैं। किंतु समझ-

दार व्यक्तियों को विवेक से काम लेना चाहिए, न कि उसमें बह जाना। फिर मार-पीट करना, गाली देना आदि तो मनुष्य का वह निम्न कोटि का कार्य है, जो असभ्यता, बर्बरता और हमारी पाशविक प्रवृत्ति का द्योतक है, और बहुत ही निंद्य है, जैसा सभी जिम्मेदार व्यक्तियों ने उसे ठहराया है। हमारी सबसे यही अपील है, भविष्य में जनता कोई भी कार्य करने से पहले वस्तुस्थिति समझ ले, और प्रांतीयता-जैसी संकुचित भावना अपने हृदय से पूर्ण रूप से निकाल दे, और इस प्रकार के गैर-जिम्मेदार व्यक्तियों को विधान के सम्मुख लावे। आशा है, सभी भारतीय, जो राष्ट्र को सुदृढ़ और सुखी देखना चाहते हैं, इस कार्य में पूर्ण सहयोग देंगे।

कांग्रेस ने भाषा के हिसाब से ही भारत के प्रांत बनाने का प्रोग्राम रक्खा है। यही माँग पेश की है। आज भी इसी नीति के अनुसार आंध्र, महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजरात प्रांत बनाए जाने की बात हो रही है। कारण, जनता अपनी ही भाषा के लोगों के साथ ज्यादा सुख से रह सकेगी। यदि किसी प्रदेश को भिन्न-भाषा-भाषी प्रांत के साथ जोड़ दिया जायगा, तो उस प्रदेश की जनता सारे प्रांत में अपने को अल्पसंख्या में पाएगी। यह सत्य भी है, ग़रीब प्रजा की दृष्टि से मुख्य प्रश्न भाषा, वेष-भूषा और रहन-सहन का ही है, और इन्हीं की समानता के आधार पर हमें प्रांत-निर्माण करना भी चाहिए।

वर्तमान परिस्थितियाँ देखते देश में प्रांतीयता की भावना बढ़ती

ही जा रही है। यह घटेगी, ऐसा मालूम नहीं होता। यद्यपि इसके विरुद्ध हमारे नेता आवाज़ उठा रहे हैं, लेकिन जिस तरह प्रांतीय सांप्रदायिकता देश में नष्ट नहीं हो सकी, उसी तरह प्रांतीयता का भी नष्ट होना मुश्किल मालूम होता है। हरएक प्रांत-वासी अपना प्रांत सबल बनाने की चेष्टा में लगे हैं। हमारे बंगाली भाइयों ने बिहार के कुछ हिस्सों को, जिनमें लोग बँगला बोलते हैं, पश्चिम बंगाल में मिला देने के लिये आंदोलन शुरू कर दिया। खैर, जब तक सम-भाषा-भाषी लोगों का प्रश्न है, हम कांग्रेस की मान्य नीति के अनुसार इस माँग को, यदि ऐसा ही हो, न्याय-संगत कह भी सकते हैं, किंतु कांग्रेस के उत्तरदायी व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इस प्रकार की भावनाओं की पुष्टि करें, तो यह वास्तव में महान् दुःख की बात है। हमें भले प्रकार विचार लेना चाहिए, इस प्रकार हम अपनी केंद्रीय सरकार को निर्बल बनाते हैं—अपनी नवजात स्वतंत्रता पर कुठाराघात करते हैं। यह हमारी प्रांतीयता की बहुत ही घातक भावना है, और है इसका एक नितांत अवांछनीय रूप। प्रत्येक उत्तरदायी को अपना उत्तरदायित्व ध्यान में रखते मुख से शब्द निकालने चाहिए। यही उसका कर्तव्य है। इस प्रकार से कहना बहुत विवादास्पद है, और इससे एक प्रांत तथा अन्य प्रांतों में बहुत भारी झगड़ा तथा वैमनस्य खड़ा होने की संभावना है। अतएव हमारी यह प्रबल इच्छा और साग्रह अनुरोध है, जो लोग इस संबंध में बोलें या लिखें, वे भावनावेश में न आ ठंडे दिल और दिमाग़

से इस प्रकार के विषयों पर अपने विचार प्रकट करें। व्यर्थ जहर और आग उगलने से हानि के सिवा लाभ होने की संभावना नहीं। हमें आशा है, भविष्य में ज़िम्मेदार कार्यकर्ता तथा जनता के नेता इस विषय में सतर्क हो कांग्रेस के निर्धारित मार्ग का अवलंबन करेंगे, और उसकी नीति के अनुसार अपनी उचित तथा जायज़ माँग रक्खेंगे।

स्वाधीन भारतीय राष्ट्र को उन्नतिशील एवं शक्तिशाली बनाने के लिये आवश्यक है, देश-वासियों में राजनीतिक चेतना एव प्रखर कर्तव्य-बोध जाग्रत् हो। वे अपने अधिकारों के साथ-साथ अपने कर्तव्य एवं दायित्व समझें और उनका सम्यक् पालन करें। स्वदेश-प्रेम की भावना जाग्रत् होने पर राष्ट्र की अनेक समस्याओं का समाधान आप ही हो जाता है। स्वदेश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता-बोध राष्ट्र का चरित्र उन्नत एवं महिमाशाली बनाता और उसके गठन की नींव सुदृढ़ करता है। जब स्वदेश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना शिथिल होने लगती है, तब राष्ट्रीय जीवन में नाना प्रकार के दुर्गुण एवं दुर्नीति, अनाचार एवं भ्रष्टाचार दिखाई पड़ने लगते और राष्ट्र की शक्तियाँ विभिन्न एवं विशृंखल होने लगती हैं। इस प्रकार राष्ट्र संकट-काल उपस्थित होने पर आत्मरक्षा करने में भी असमर्थ हो जाता और सहज ही शत्रुओं द्वारा पराभूत होता है।

भारत का अतीत इतिहास प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक हमें यही बता रहा है, देश-प्रेम एवं अखंड राष्ट्रीयता

की भावना संकीर्ण एवं शिथिल होने के कारण ही भारत बार-बार विदेशियों द्वारा आक्रांत एवं पराभूत हुआ। जब-जब भारत की केंद्रिय राजशक्ति अशक्त एवं अक्षम हुई, और उसके विभिन्न प्रदेशों में प्रादेशिकता तथा स्थानीय देश-प्रेम की भावना बढ़ने लगी, तब-तब विदेशियों ने देश पर आक्रमण किया; और देश की इस विच्छिन्न एवं खंडित राष्ट्रीयता से लाभ उठाया। समय-समय पर भारत के विभिन्न प्रदेशों में पृथकत्व की भावना जब उग्र हो उठी, तभी विदेशियों के लिये एक-एक प्रदेश पर आक्रमण कर उसे विभिन्न करना सहज हुआ। भारतीय इतिहास का यह सबक़ हम कभी न भूलें, और प्रादेशिकता एवं पृथकत्व की भावना से ऊपर उठ समग्र राष्ट्र के लिये राजनीतिक चेतना एवं राष्ट्रीयता-बोध जगाने का भरसक प्रयत्न करें। इसी में हमारा कल्याण है; और तभी हम अपने नवजात स्वाधीन राष्ट्र को संसार की दृष्टि में महिमाशाली बना सकते हैं।

हमारा राष्ट्रीयता-बोध अभी तक बहुत संकुचित बना हुआ है। हम जाति, संप्रदाय और प्रांत की संकीर्ण भावना से ऊपर उठ समग्र राष्ट्र के हित एवं स्वार्थों पर विचार तथा राष्ट्र के लिये जाति, संप्रदाय एवं प्रांतगत प्रेम का परित्याग करने की क्षमता उत्पन्न नहीं करते। हम व्यापक दृष्टिकोण एवं उदार मनोभाव लेकर राष्ट्र की समस्याओं पर विचार नहीं करते। हम राष्ट्र के स्वार्थ की अपेक्षा जाति, संप्रदाय एवं प्रांत के स्वार्थों को बड़ा कर देखते हैं। अपने प्रांत एवं संप्रदाय के स्वार्थ ले हम

राष्ट्र का स्वार्थ भूल बैठते हैं। इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति धारण करनेवाले लोग जिस राष्ट्र के अंदर अधिक संख्या में होंगे, उस राष्ट्र के गठन की नींव कभी सुदृढ़ नहीं हो सकती, और न उसके नागरिकों में राष्ट्र के लिये ममता-बोध ही उत्पन्न हो सकता है। इसलिये नव राष्ट्र के नागरिकों में स्वदेश-प्रेम की प्रेरणा अनवरत रूप में जगानी होगी। हमारे देश में आज प्रांतीयता तथा एक-एक प्रांत को भाषा एवं संस्कृति की विभिन्नता के नाम से देश को अनेक खंडों में विभक्त करने की भावना प्रबल हो उठी है। प्रांत के एक अंचल से अब यह आवाज़ उठने लगी है, इस अंचल या भू-भाग की भाषा या संस्कृति के आधार पर प्रांतों का गठन हो। यही आज कुछ लोगों के लिये सबसे बड़ा राजनीतिक ध्येय हो गया है। और, इस प्रकार की राजनीतिक चेतना तथा स्थानीय देश-प्रेम जनता में उत्पन्न करने की चेष्टा वे बड़ी तत्परता से कर रहे हैं। इसका अवश्यंभावी परिणाम यही होगा, लोग अपने प्रदेश को, अपने राष्ट्र को भूल उसकी अखंडता तथा समग्रता की भावना अपने में बद्ध-मूल नहीं होने देंगे, और कोई भी प्रदेश समृद्ध एवं संपन्न नहीं बन सकेगा। सिद्धांत के रूप में भाषागत प्रांतों के विभाजन मान्य होंगे, पर हमें इस प्रश्न के दूसरे पहलुओं पर भी विचार करना और तब किसी निर्णय पर पहुँचना होगा। देश के भविष्य के लिये यह शुभ होगा, यदि कुछ समय के लिये प्रांतों का पुनर्विभाजन रोक दिया जाय। इसलिये एक ओर जहाँ राज-

नैतिक चेतना उत्पन्न करने तथा राष्ट्रीयता के उद्‌बोधन के लिये सब प्रकार के उपयुक्त साधनों का प्रयोग करना पड़ेगा, वहाँ दूसरी ओर प्रांतीय सरकारों को कुछ क़ानूनी उपाय भी काम में लाने होंगे, जिनसे जातिवाद या प्रांतीयता की भावना पनप न सके, और इस भावना का बीज देश-वासियों के मन में अंकुरित न होने पावे। इसके लिये सरकार अविलंब निम्न-लिखित उपाय काम में ला सकती है—

(१) प्रांतीयता की भावना दूर करने के लिये भारत-संघ के संविधान में इस प्रकार की एक धारा जोड़ दी जाय कि भारत-संघ के अंतर्गत किसी भी प्रदेश या प्रांत अथवा स्टेट में किसी भी नागरिक को बसने या चल-अचल संपत्ति अर्जित करने तथा सार्वजनिक नौकरियों के लिये प्रार्थी होने का अधिकार होगा। किसी भी प्रांत को यह अधिकार न होगा कि वह एक प्रांत या दूसरे प्रांत के अधिकारियों के बीच केवल प्रांत-भेद के कारण सरकारी पदों पर नियुक्त करने में भेद-भाव-मूलक व्यवहार करें। सरकारी पदों के लिये एकमात्र योग्यता ही कसौटी होनी चाहिए।

(२) विभिन्न प्रांतों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान के द्वारा संपर्क स्थापित करने के जितने तरीक़े काम में लाए जा सकते हैं, उन सबसे काम लिया जाय, जिससे प्रांतीयता की भावना दबी रहे, और भारत-संघ की अखंडता एवं एकराष्ट्रीयता की भावना परिपुष्ट तथा परिवर्द्धित हो।

यही सब कुछ व्यावहारिक उपाय है, जिसके अनुसार कार्य होने से प्रांतीयता की भावना से हम छुटकारा पा सकेंगे, और हमारा देश राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर होता हुआ एक राष्ट्र के रूप में समृद्ध, संपन्न एवं शक्तिशाली होगा।

बीस

मुद्रा-प्रसार-विरोधी सरकारी नीति

आखिर पर्याप्त परामर्श और काफ़ी सोच-विचार के पश्चात् सरकार ने मुद्रा-स्फीत-विरोधी अपनी योजना की घोषणा कर ही दी। अपनी इस नई योजना के आरंभ में ही सरकार का कहना है, वृद्धिंगत मुद्रा-प्रसार का सबसे बड़ा दुष्परिणाम मूल्य-वृद्धि है। अपनी नीति स्थित करने में उसने जिन बातों का ध्यान रक्खा है, उनमें मुख्य बात है, यथासंभव ख़र्च घटाया जाय, और सभी उपायों द्वारा आमदनी बढ़ाई जाय। इसके लिये ऐसी भावी नीति बनाई जाय, जिससे कम-से-कम समय में मूल्य ठिकाने पर आ जाय, और सामान तथा कार्य की कमी न रहे। यह तभी संभव है, जब किसी वर्ग के हाथ की विक्रय-शक्ति कम की जाय, और आगे उसमें वृद्धि न होने पाए। इस प्रकार हम देखते हैं, इसमें किसी प्रकार के क्रांतिकारी उपाय

ग्रहण नहीं किए गए हैं। उसने मध्य के मार्ग का ही अवलंबन किया है।

अब लाभ का बजट कैसे बनाया जायगा, यह समझ में नहीं आता। खर्च घटाने का सरकारी विभागों की ओर से विरोध होगा, क्योंकि उसमें उनका स्वार्थ घुसा है। यदि कोई बहुत बचत हो ही गई, तो उससे विशेष लाभ न होगा। सरकार ने अपनी इस आर्थिक नीति को सफल बनाने के लिये जिन साधनों का सहारा लिया है, उनका संबंध विशेष रूप से समस्या के आर्थिक पहलू से ही है। किंतु इस समस्या का दूसरा दृष्टि-कोण है खाद्य, वस्त्र आदि के नियंत्रण और वितरण की व्यवस्था। मुद्रा-स्फीत तथा इस नियंत्रण और वितरण की नीति का गहरा संबंध है। इसलिये इन दोनों के संगठन और सहयोग पर ही सफलता निर्भर है। यद्यपि सरकार ने घोषणा की है, वह निकट भविष्य में अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं पर भी नियंत्रण लागू करेगी। हमारी राय में भी जब तक वस्तुओं का नियंत्रण और वितरण व्यापक रूप तथा दृढ़ता से न होगा, तब तक मुद्रा-स्फीत में केवल आर्थिक साधनों द्वारा ही सफलता मिलना प्रायः कठिन-सा है। इस आर्थिक पहलू पर अधिक जोर देने से योजना का भार एकांगी-सा प्रतीत होता है। बिड़लाजी का भी स्पष्ट मत है—"सभी दिशाओं में खर्च में भारी कमी करना आवश्यक है।" केवल उद्योग-पतियों को ही बराबर न दबाया जाना चाहिए। इससे

उद्योगों के विकास रुक जाने की आशंका है। यद्यपि अनुचित लाभ का समर्थन नहीं किया जा सकता, पर यदि उद्योगों में कुछ लाभ ही न रहा, तो उनमें पूँजी लगाने का आकर्षण या प्रोत्साहन न रहेगा। इसलिये सरकार को जनता के प्रत्येक वर्ग के सहयोग से संतुलित नीति का व्यवहार करना चाहिए।

अंत में हम सरकार की इस नीति का स्वागत करते हैं। इस प्रकार की एक उचित और यथार्थ नीति की अत्यंत आवश्यकता थी। किंतु अभी इसकी सफलता अथवा असफलता के विषय में अधिक न कह हम केवल यही कह सकते हैं, भारत-सरकार ने अपनी इस योजना में विशेष रूप से समस्या के आर्थिक पहलू पर ही अधिक ज़ोर दिया है, जिसके अंतर्गत बजट-संतुलन, सरकारी क़र्ज़ा-नीति तथा पूँजी के व्याज की दर आदि आते हैं। उसे इसके दूसरे दृष्टि-कोण पर भी ध्यान देना चाहिए था, जिसका संबंध खाद्य, वस्त्र आदि के नियंत्रण और वितरण की व्यवस्था से है। जब तक इसकी एक व्यापक तथा उचित व्यवस्था जनता के सहयोग से कार्यान्वित नहीं होती, तब तक मुद्रा-स्फीत तथा मूल्य-वृद्धि की रोक में सफलता का कम ही अवसर है। मुद्रा-स्फीत के परिणाम-स्वरूप वस्तुओं के बढ़ते मूल्य रोकने के लिये अभी हाल में सरकार ने अनेक प्रकार के उत्पादन कर लगाने तथा बैंकों द्वारा कड़ाई के साथ रुपया उधार दिए जाने की नीति का अनुसरण किया है। इसके लिये सरकार का कहना है, वह इस प्रकार विशिष्ट

उद्योगों और व्यापारों में जो अतिरिक्त मुनाफ़ा होता है, उसे कम करने में समर्थ होगी, तथा कंट्रोल और वितरण की व्यवस्था के नियंत्रण के अलावा उपभोक्ताओं की माँग कम करने का प्रयत्न करेगी। यह भी समस्या का आर्थिक पहलू है, किंतु दूसरे दृष्टि-कोण से इसकी सफलता भविष्य ही निश्चित करेग ।

इक्कीस

हमारी राष्ट्रीयता का सामाजिक घुन

हमारा भारत स्वतंत्र हो गया है। राष्ट्रीय सरकार बन गई है। उन्नति तथा विकास के लिये अनेक कर्तव्य बढ़ गए हैं। जनता को सहज भाव से सहयोग देना चाहिए। यदि वह अपना कार्य पूरा न करेगी, तो उसी का अहित होगा। राष्ट्र के उच्च अधिकारी हमारे ही प्रतिनिधि हैं। उनकी योजनाओं तथा कार्यों में सामान्य तथा शासन-तंत्र में भाग लेनेवाली जनता को स्वार्थ छोड़ अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

प्रथम हमें यह समझ लेना चाहिए, राष्ट्रीयता का क्या अभिप्राय है? इसे हम सीधे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं, हमें राष्ट्रीय सरकार की भावनाएँ, योजनाएँ और कार्य समझ तथा अपने उत्तरदायित्व का अनुभव कर कर्तव्य-बुद्धि के अनुसार अपने कार्य निभाने चाहिए। यही राष्ट्रीयता की सहज व्याख्या है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति अनायास ही समझ सकता है।

हमारी सामाजिकता का अभिप्राय है, हम समाज की उन्नति से संबंधित कार्यों में सहयोग दें, विरोधी कार्यों का विधिवत् विरोध करें। स्वार्थों को छोड़ उपयोगी विचारों और योजनाओं को उपस्थित करें। केवल वाणी से न कह अपने कर्मों द्वारा अन्य व्यक्तियों को प्रेरणा देते समाज को उच्च बनाएँ।

राष्ट्रीयता और सामाजिकता में कोई ऐसा भेद नहीं, जो भिन्न-भिन्न कर्तव्यों का निर्देश करे, और वे आपस में विरोधी हों। वस्तुतः वे दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। हमारा दृष्टि-कोण उदार होना चाहिए। वे एक दूसरे से संबंधित हैं। दोनों ही हमें उन्नति के पथ पर अग्रसर करती हैं।

किंतु जब हम अपने कर्तव्य भूल जाते और विरोधी आचरण करते हैं, तो हमें अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। उससे जनता का अहित होता है। सरकार पर अनुचित और अनावश्यक भार पड़ता है। उससे प्रजा तथा शासन-वर्ग में असंतोष हो जाता है। मनुष्य मनुष्य पर विश्वास नहीं करता। समाज अपनी तथा दूसरों की नजरों से गिर जाता है। कपड़े की समस्या इसका विशेष उदाहरण है।

कंट्रोल टूटने से पूर्व यह अनुमान किया जाता था, कंट्रोल हटाने से जनता को सुविधा होगी। कपड़े का मूल्य थोड़ा ही बढ़ेगा, और कुछ ही समय में स्थिति सुधर जायगी। किंतु वैसा न हुआ। कपड़ों का मूल्य कंट्रोल-रेट से लगभग दुगुना बढ़ गया। व्यापारियों ने सद्भावना छोड़, लोभ के वशीभूत

हो इस लोक-हित के कार्य में सहयोग न दिया। सरकार ने सुधार (मूल्य-नियंत्रण) के लिये सभी अधिकार व्यापारी-वर्ग को समर्पित कर दिए। उन्होंने कंट्रोल के दाम भी वस्त्रों से हटा दिए। इस अद्भुत कार्य से जनता की और भी अधिक क्षति हुई।

यही नहीं, व्यापारियों ने षड्यंत्र रच कपड़े को पाकिस्तान भेजना भी शुरू कर दिया। इससे देश में कपड़े की कमी होने के कारण मूल्य में वृद्धि होने लगी। वे लोग पूर्वी बंगाल में भी कपड़े को कंट्रोल से तिगुने दामों में बेचते हैं। वे अपने स्वार्थों के लिये क़ानून तथा लोक-हित को तिलांजलि दे यह दूषित कर्म निर्लज्ज हो करते हैं। माल बाहर भेजने के लिये पुलिस, टिकट-चेकर, टिकट-कलेक्टर और कुलियों को भी रिश्वत देते हैं। इस तरह एक सिरे से दूसरे सिरे तक अव्यवस्था और भ्रष्टाचार का जाल बिछाते हैं।

सरकार ने यह समस्या हल करने के लिये सीमा पर स्थित स्टेशनों पर तलाशी लेनी शुरू की। एक ही दिन में राना-घाट में काफ़ी अधिक सामान प्राप्त हुआ। इस तरह एक दूसरी घटना से यह पता लगा था, इन लोगों का षड्यंत्र सुसंगठित और संभवतः भारत-व्यापी है। सरकार ने अनेक अपराधी पकड़े, परंतु न-जाने क्यों उनके नाम प्रकाशित नहीं किए।

ये व्यापारी लोग समाज के महान् द्वेषी हैं। ये निर्धन न होने पर भी धन कमाने के लिये अनुचित विधियों का प्रयोग

करते हैं। वे जनता, क़ानून तथा सरकार की उपेक्षा कर अपने स्वार्थ-साधन में लगे रहते हैं। उनकी यह दूषित मनोवृत्ति दूर करने के लिये सरकार को दृढ़ता धारण कर कड़े-से-कड़े दंड का उपयोग करना चाहिए।

विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में नक़ल करनेवाले विद्यार्थी को उस वर्ष फ़ेल कर कुछ वर्षों के लिये परीक्षा देने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। उससे उनके चरित्र पर इस बात का प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य अपराधों के लिये भी व्यवस्था है। यद्यपि वे विद्यार्थी यह काम वैयक्तिक स्वार्थ के लिये करते हैं, और उनका समाज से उतना संबंध नहीं, जितना इन लोभी व्यापारियों का। वे विद्यार्थी क़ानून की उतनी उपेक्षा नहीं करते, जितनी ये लोग। क्या इसी प्रकार इन व्यापारियों को नहीं सुधारा जा सकता? केवल कुछ शक्ति की ज़रूरत है।

सरकार ने इसे सुलझाने के लिये अवैध कपड़े की आयात बंद कर दी है। परंतु इससे नफ़ाख़ोरों के बजाय सामान्य जनता पर अधिक भार पड़ता है। इसलिये उसे वस्त्र का आयात खोल वास्तविक अपराधियों पर ही दंडारोपण करना चाहिए। यदि सरकार चाहे, तो वह कंट्रोल को दुबारा लगाकर भी अपने निरीक्षण के अंदर इस प्रकार की वस्तुओं का वितरण कर सकती है। वह उत्पादकों तथा विक्रेताओं को अपने नियंत्रण में रख सकती है। अस्तु। अंत में हमारा यही निवेदन है, जनता तथा अधिकारी-वर्ग को अपने कर्तव्य पर ध्यान दे यह

विषम परिस्थिति दूर कर देनी चाहिए, और अपनी राष्ट्रीयता में लगे इस सामाजिक घुन का जड़ से उन्मूलन कर लोक-हित की भावना अपनानी चाहिए, तभी व्यापारी तथा व्यवसायी-वर्ग पर लगा यह कलंक धुल सकेगा। हमारी राय में यह समस्या हल करने के लिये मिलों को खुदरा बिक्री की संयुक्त दूकानें खोलनी चाहिए। इससे व्यापार की प्रतिष्ठा बढ़ेगी यदि सरकार कोई उपयोगी योजना प्रस्तुत करे, तो व्यापारी-वर्ग उसे भी स्वीकार करे। लोक-हित के लिये वैयक्तिक तथा वर्गीय स्वार्थ उपस्थित न करना चाहिए। मिल-मालिकों को भी किसी योजना से जनता में विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। इन कार्यों की सफलता विक्रेताओं पर स्थित है। उन्हें योग्यता-पूर्वक अपना कर्तव्य निभाना होगा। अंत में हम ग्राहकों से निवेदन करेंगे, वे ऐसी वस्तु अधिक खरीद उसका मूल्य बढ़ाते हैं। यदि आवश्यकता कम होगी, तो वस्तु का मूल्य गिर जायगा। आशा है, ये सुझाव उद्योग-पति, सरकार, व्यवसायी तथा ग्राहक उसी भावना से ग्रहण करेंगे, जिस भावना से उन्हें दिए गए हैं।

परिशिष्ट

१. जीवन-झाँकियाँ

२. एक भविष्य-वाणी

बाईस

युग के प्रतिनिधि पुरुष का स्थायी स्मारक

देवता-स्वरूप पूज्य बापूजी का नश्वर, पार्थिव शरीर आज हमारे बीच में नहीं; किंतु उनकी आत्मा ने समय, स्थान और परिस्थिति के बंधनों से परे प्रत्येक देशवासी के हृदय में, जनता-जनार्दन के भाव-रूप से, जन्म ले लिया है, जो युग-युग तक स्थायी रहेगा। शारीरिक सीमा की मुक्ति से तो उनके आकर्षक व्यक्तित्व का असीम विस्तार हुआ है—उन्होंने सर्वव्यापी से तादात्म्य कर लिया है, जिनकी सत्य, शिव, सुंदर प्रेरणा सदैव जीवन को अपना वास्तविक रूप देने की ओर प्रेरित करती रहेगी। ऐसे महान् पुरुषों की मृत्यु तो वास्तविक जीवन के रूप में होती है, और वे भाव-रूप से स्वयं ही अपने अमिट और अमर स्मारक होते हैं, जिसकी पार्थिव साधनों द्वारा कोई भी अभिव्यक्ति काल की सीमा से बँध रह जायगी।

गांधीजी अपने युग के प्रतिनिधि पुरुष थे। यदि हम गंभीरता-पूर्वक विचार करें, तो युग का प्रतिनिधि पुरुष उसी को कहा जा सकता है, जिसमें ये तीन लक्षण परिलक्षित हों—सर्वप्रथम प्राचीन की सभी मुख्य धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक धाराओं का जिसमें समन्वय हो। सो हम अपने राष्ट्र-पिता में इन्हें सत्य, अहिंसा, अछूतोद्धार तथा हिंदू-मुस्लिम-एकता के रूप में स्पष्ट तरीक़े से पाते हैं। भारतीय इतिहास के गंभीर अध्ययन से यह हमें भली भाँति विदित हो जायगा कि महात्मा गांधी से पूर्व भारतीय भूमि-पृष्ठ पर अपने-अपने निजी क्षेत्र में प्रधानतः यह त्रिवेणी अपने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वह रही थी, जिसका समन्वय हमारे राष्ट्र-पिता में सच्चे रूप में जाकर हुआ। इसी प्रकार महात्मा बुद्ध के अहिंसा के सिद्धांत के लिये भी भूमि का पृष्ठ पहले से ही तैयार हो गया था—इतिहास इसका ज्वलंत प्रमाण है। दूसरे, वर्तमान में प्रतिनिधि पुरुष में उन सभी धाराओं की एक वैज्ञानिक अभिव्यक्ति होती है, और वह युग की माँग का पूर्ण प्रतीक होता है। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव जीवन के प्रत्येक पहलू में अनुभव होता है। इस लक्षण के नाते महात्माजी के सार्वजनिक जीवन पर दृष्टि डालने से विदित होता है, वह जीवित रहे, तो अपने उन्हीं सिद्धांतों—युग की माँग के लिये, तथा अपनी सांसारिक सीमाओं का विसर्जन किया, तो उन्हीं की ख़ातिर। धर्म, समाज, राजनीति, सभी में इकाई की भाँति एक

रस, एक ही ध्रुव-सत्य की अभिव्यक्ति की, इन सबको एक ही धरातल पर ला एक ही शाश्वत माप-दंड की वस्तु बनाया। उन्होंने अपने जीवन में यह पूर्ण रूप से अभिव्यक्त कर दिखा दिया कि राजनीति, धर्म अथवा समाज के सत्य, मान्यताएँ कोई भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं, वरन् उसी एक विराट् सत्य के एक ही अंश हैं। तीसरे, युग के प्रतिनिधि पुरुष में भविष्य के लिये संकेत, दिशा-निदर्शन होता है—सो पूज्य बापू में सुचारु रूप से हम पाते हैं। इस संकेत, दिशा-निदर्शन का पहचानना, समझना तथा इस ओर कमर कस आगे बढ़ना ही हमारे युग के प्रतिनिधि पुरुष का स्थायी स्मारक होगा, यही हम सबकी सच्ची श्रद्धांजलि होगी, और होगा उनका छोड़ा अधूरा काम पूर्ण करना।

इस प्रकार प्रचीन का समन्वय, वर्तमान में अभिव्यक्ति तथा भविष्य के लिये संकेत—तीनों ही लक्षण एक जगह विद्यमान थे, जिसके कारण महात्मा गांधी युग के प्रतिनिधि पुरुष थे। अब राष्ट्र के सम्मुख एक कर्तव्य है—ऐसे महापुरुष का उपयुक्त, स्थायी स्मारक क्या हो? अब तक जनता की ओर से इस संबंध में जो सार्वजनिक सुझाव पेश किए गए हैं, वे ये है—(१) नई दिल्ली अथवा किसी भी प्रधान प्रांतीय राजधानी का नाम गांधी-नगर रक्खा जाय। (२) भारतीय टिकटों तथा सिक्कों पर महात्मा गांधी का फ़ोटो हो। (३) भारत की सबसे लंबी सड़क ग्रांड ट्रंक रोड का

नाम महात्मा गांधी रोड रक्खा जाय। (४) यमुना के किनारे, जहाँ महात्मा गांधीजी का दाह-संस्कार हुआ था, एक संगमरमर का बहुत बड़ा भवन, स्मारक के रूप में, निर्माण कराया जाय, तथा इसी प्रकार के स्मारक उन सभी स्थानों पर निर्माण किए जायँ, जहाँ भारत की भिन्न-भिन्न नदियों में तारीख़ १२ फ़रवरी को महात्माजी का अस्थि-विसर्जन-संस्कार किया गया था। (५) भारतीय सभी फ़िल्म-खेल समाप्त होने के उपरांत महात्माजी का फ़ोटो इसी प्रकार दिखाया करें, जिस प्रकार इँगलिश फ़िल्मों में सम्राट् तथा सम्राज्ञी के फ़ोटो सिनेमा के अंत में दिखाए जाते हैं। (६) गांधी-संवत् के नाम से एक नया संवत् प्रारंभ किया जाय। (७) एक ऐसा विश्व-विद्यालय इस योजना के साथ प्रारंभ किया जाय, जहाँ महात्मा गांधी के सिद्धांतों, उपदेशों, शिक्षाओं तथा रचनाओं की शिक्षा दी जाय, और इस संबंध में आगे खोज का कार्य किया जाय, और जहाँ प्रत्येक देश, जाति तथा धर्म के विद्यार्थी आ शिक्षा प्राप्त कर सकें। (८) महाराज अशोक के स्तंभों की भाँति देश-विदेशों तथा प्रत्येक प्रसिद्ध स्थानों पर स्तंभ खड़े किए जायँ, जिन पर गांधीजी के उपदेश तथा शिक्षाएँ खुदी हों, आदि-आदि। ये सभी प्रकार के सुझाव सुंदर तथा सामयिक हैं, और हमारे विचार से उस महान् पुरुष के स्मारक-स्वरूप अवश्य ही उपयोग में लाए भी जाने चाहिए। किंतु ये सब समय की सीमा से बँधे हुए हैं।

इस बात का इतिहास साक्षी है—जैसे बड़े-बड़े स्मारक, मिस्र के पिरेमिड, साँची तथा सारनाथ के स्तूप आदि इतिहास के गर्त में कुछ विलीन-से हो गए। किंतु परम माननीय महात्माजी के उपयुक्त तो हमें ऐसा स्थायी स्मारक बनाना है, जो इन सबसे भिन्न, अद्वितीय और काल की अबाधित गति से परे हो। तभी वह आनेवाली संतानों के लिये युग-युग तक एक सच्चा स्मारक साबित होगा। हमारे विचार से परिमाण और रूप से कोई भी ऐसा नहीं है, जो किसी स्मारक को अमरत्व प्रदान कर सके, जिससे किसी महान् पुरुष की याद सदैव जीवित रहे। यह हमारे राष्ट्र के सम्मुख एक समस्या के रूप में है। स्मारक कोई ऐसा होना चाहिए, जो महात्माजी के आदर्शों को अमर बनाए रक्खे—उस शांति के अग्र दूत के संदेशों को संसृति के अंतिम क्षणों तक मुखरित करता रहे। वही स्थायी स्मारक होगा। वह स्मारक उतना ही महान् होना चाहिए, जितना महात्माजी स्वयं थे। उनमें गीता, क़ुरान, बाइबिल तथा अवस्ता का सबसे सुंदर समन्वय था, साक्रेटीज़ की बुद्धिमत्ता थी और टाल्सटाय की इच्छा-शक्ति। अब उनका स्मारक भी ऐसा होना चाहिए, जिसमें हिंदू, मुस्लिम, ईसाई तथा बौद्ध सभी अपने 'अपनत्व' का दर्शन कर सकें। इस समस्या के हल की ओर एक संकेत-सा करते, भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंट बेटेन ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते कहा था—सबसे अच्छा स्मारक, जो हम महात्मा गांधीजी का बना सकते हैं, यह है कि हम अपने हृदय, मस्तिष्क

तथा हाथों का इस प्रकार परिवर्तन करें, जिससे भारत सामाजिक और आर्थिक न्याय की भित्ति पर एक अद्वितीय प्रजातंत्र देश बन सके। यह ऐसा देश हो, जहाँ प्रत्येक मनुष्य का उपयोगी तथा क्रियात्मक जीवन हो सके, तथा जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो, और न कोई राष्ट्र एक दूसरे का गुलाम हो। यही गांधीजी के आदर्श की सबसे सुंदर पूर्ति होगी। ऐसे ही भाव भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी नेहरू ने व्यक्त किए थे कि हम सबका गांधीजी के प्रति एक कर्तव्य है, वह यह कि उनके अधूरा कार्य को पूरा करें, और उनके आदर्श के अनुरूप भारत का निर्माण करें, जिसमें बिना किसी धर्म, जाति और विश्वास के भेद-भाव के सब मनुष्य बराबर समझे जायँ। महात्मा गांधीजी का सबसे सुंदर तथा सुंदर से सुंदरतम-स्थायी स्मारक वही होगा, जिससे निरंतर यह ध्वनि निकलती रहेगी—"युग-युग तक चलती रहेगी तेरी अमर कहानी।" अंत में हम आशा करते हैं, हमारी राष्ट्रीय सरकार अवश्य ही भारत की स्वतंत्रता के जन्मदाता महात्मा गांधी के स्थायी स्मारक की समस्या का एक उचित हल ढूँढ़ निकालेगी, और इसके संपादन का कार्य सबसे योग्य और अनुभवी हाथों सुपुर्द करेगी।

इसी संबंध में हमारे राष्ट्र-पति डॉ० राजेंद्रप्रसादजी ने एक सामयिक अपील निकाली थी, गांधीजी का व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग स्मारक न बना जो केंद्रीय राष्ट्रीय गांधी-

स्मारक कोष है, उसी को शक्तिशाली बनाया जाय, और उसी के तत्त्वावधान में एक महान् तथा स्थायी स्मारक निर्माण हो। आशा है, जनता इस पर समुचित ध्यान तथा मुक्त हस्त से इस योजना में सहयोग देगी।

तेईस

श्रीबज़ाज़ की पुण्य तिथि—उसका दिशा-संकेत

राष्ट्र-बापू के पाँचवें पुत्र सेठ जमुनालाल बजाज की निधन-तिथि देश-भर में श्रद्धा के साथ मनाई जाती है, और इस महान् दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की जाती हैं। निधन-तिथि आती और चली जाती है, किंतु उसके पीछे क्या कर्तव्य-दिशा है, वह हमें भविष्य के लिये क्या संकेत करती है, इसे समझना और उससे यथोचित प्रेरणा प्राप्त करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। विशेष रूप से यह हमारा सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक उत्तरदायित्व है, जिसे हमें निभाना ही चाहिए।

यह दिशा-संकेत पहचानने के लिये हमें उनके सर्वप्रिय महान् व्यक्तित्व का विश्लेषण करना होगा। बजाजजी के ऊँचे-पूरे और विशाल शरीर में उतनी ही विशाल आत्मा और

उन्नत हृदय था। उनकी विशालता में स्वाभाविकता थी। उनकी बुद्धि की उदारता और शक्ति उनके साथ अनेक संस्थाओं में काम करनेवाले उनके सहकारी भली भाँति जानते थे, और उनके हृदय की विशालता का अनुभव तो प्रायः सभी को है। सेठ जमुनालालजी ने जयपुर और सीकर में बैठ जो अलख जगाया था, उसने सारे राजपूताने में अभिनव राजनीतिक जागृति उत्पन्न कर दी थी। वास्तव में सारे राजपूताने की वर्तमान राजनीतिक हलचल बहुत कुछ सेठजी की प्रेरणा, दिशा-निर्देश और उदारता का ही फल है। हमें विश्वास है, सेठजी का आत्मगौरव, ईमानदारी, सचाई, व्यावहारिकता और सामान्य बुद्धि की प्रेरणा आज के राजस्थानीय कांग्रेस-संगठन को अनुप्राणित करेगी—आज के महत्त्व-पूर्ण निर्णयों के समय में उन जन-नेताओं का सही नेतृत्व करेगी, जिससे वे सिद्धांत की प्रधान बातों पर कोई समझौता न करते हुए भी दूरदर्शिता और समत्व के सहारे कम-से-कम भविष्य के विशाल राजस्थान-स्टेट की नींव कटुता और द्वेष के बजाय पारस्परिक सहयोग पर ही रक्खेंगे।

सेठ जमुनालालजी बजाज जयपुर और राजपूताना के ही नहीं रह गए थे, वरन् वह सारे हिंदुस्थान के—राष्ट्र के हो गए थे, इसलिये उनके महान् व्यक्तित्व की इकाई में एक पूर्ण राष्ट्रीय महत्त्व निहित है। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में, गांधीजी के शुद्ध रचनात्मक क्षेत्र में जो

कुछ किया, अपने तन, मन और धन से जितनी सेवा की, देश की राजनीतिक स्वाधीनता के लिये लड़े गए संघर्ष में जो मुसीबतें और कठिनाइयाँ वीरता-पूर्वक, महात्मा गांधी के नेतृत्व में, सहीं, एवं देश की सांस्कृतिक सामाजिक, आर्थिक स्वाधीनता के लिये भी जीवन में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों के वह जिस प्रकार संस्थापक, संचालक और प्रेरक रहे, वह सब देश के इतिहास की अमिट थाती और देश-वासियों—विशेषतः धनिक और श्रेष्ठ वर्ग—के लिये आदर्श मार्ग-दर्शक कहानी है। श्रीबजाजजी धनिक और पूँजीवाले होकर भी, जैसा पूज्य गांधीजी राजा-वर्ग तथा सेठ-वर्ग के सामने आदर्श रक्खा करते थे, जनता के धन के सही अर्थों में ट्रस्टी थे। इसी लिये तो वह वैश्यर्षि थे। सामाजिक कुरूढ़ियों, अस्पर्शता आदि के वह कट्टर शत्रु थे। आज हमें अपनी सामाजिक क्रांति के आयोजन में उनसे क्रियात्मक प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए।

जीवन के अंतिम भाग में, जब उनका स्वास्थ्य बहुत खराब रहने लगा, गांधीजी ने उन्हें पूर्ण विश्राम की सम्मति दी। परंतु इस विश्राम की वेला में भी उन्होंने एक बहुत ही उपयोगी और महत्त्व-पूर्ण काम अपने हाथों में लिया। वह था गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का एक प्रमुख अंग—गो-सेवा। इस कार्य को सफलता-पूर्वक संचालित करने के लिये आपने गोपुरी में गोसेवा-संघ की गोशाला स्थापित की थी।

अंत में उनकी इस प्रकार युग-युग तक आनेवाली पुण्य

तिथि का यही एक महान् संकेत है कि वह अपने पीछे जो कार्य छोड़ गए हैं, उनके इस प्रकार के कार्यों को, समय, काल और परिस्थितियों के अनुसार, पूरा करना ही हम सबका धर्म है।

चौबीस

स्वर्गीय जिन्ना—एक महान् विरोधात्मक तथ्य

आज जिन्ना नहीं हैं, पर उनका व्यक्तित्व अब भी है। वह एक दिन कांग्रेस के ही अंग थे। परंतु जब कांग्रेस जनता की वस्तु बनने लगी, तो वह राजनीतिक, धार्मिक और जातीय विचारों से साथ न रह सके। अंगरेजों की भेद-नीति और प्रलोभनों के आकर्षण से मुस्लिम-लीग की प्रगति हुई, जिसके आप प्रमुख स्तंभ थे। १६३४ से लगातार उसके प्रधान चुने गए। भारतीय विभाजन से उत्पन्न पाकिस्तान के आप सर्वेसर्वा थे, इसमें संदेह नहीं।

उन्होंने पाकिस्तान का पृष्ठ-भूमि के रूप में जो 'टू नेशंस थ्योरी' अपनाई, वह वस्तुतः 'द्विजातीय' सिद्धांत था। अकबर महान् ने हिंदू-मुस्लिम एकता के लिये जो प्रयत्न किए थे, वह उनसे सर्वथा प्रतिकूल था। महात्मा गांधी ने जिन अहिंसा और

मानवता के सिद्धांतों का प्रचार किया था, वह उनके मूर्तिमान् विरोध थे। यदि हमारे देश में सांप्रदायिकता के परिणाम-स्वरूप विभाजन न होता, तो जनता को अनेक कष्ट भोगने न पड़ते। शरणार्थियों की समस्याएँ न होतीं, और न हैदराबाद तथा काश्मीर के मोर्चे पर संघर्ष होते।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के संघर्ष में भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों ने अपने-अपने दृष्टि-कोणों से सहयोग दिया। देश के अनेक मान्य नेताओं ने इस होम में अपनी आहुतियाँ दीं। परंतु इसमें संदेह नहीं, भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति में अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों का भी विशेष प्रभाव था। हमें दुःख है, स्वाधीनता का फल दो भाई मिल-जुल न खा सके। इसमें संदेह नहीं, यदि देश का विभाजन न होता, तो एशियाई और अंतरराष्ट्रीय एकता को भारत से महान् प्रेरणा मिलती। श्रीजिन्ना अपनी नीति-निपुणता तथा अध्यवसाय से पाकिस्तान का कल्पित स्वर्ग बनाने में सफल हुए, यह राजनीतिक तथ्य है। परंतु शरणार्थियों, गृह-हीनों और अनाथों की आत्मा से यदि यही प्रश्न पूछा जाय, तो वे अश्रुओं से भरी आँखों से इसका उत्तर न दे सकेंगे। राजनीतिक छल-कपटों से दूर भारतीय ग्रामों में हिंदू-मुस्लिम की भेद-भावना न थी। परंतु आज यह समाज का कठोर सत्य है, दोनों जातियों को एक दूसरे पर पहले-सा विश्वास नहीं। इन तथ्यों के देखते विभाजन की पृष्ठ-भूमि 'टू नेशंस थ्योरी' का समर्थन नहीं किया जा सकता।

परंतु इन सब बातों और परिणामों के अतिरिक्त श्रीजिन्ना का व्यक्तित्व महान् था। उनके जीवन से हमें अनेकों प्रेरणाएँ मिल सकती हैं। वह बुद्धिमान् तथा सूक्ष्मदर्शी विचारक थे। वह अध्यवसायी तथा अपने ध्येय के प्रति सच्चे सत्याग्रही थे। उनमें मित भाषण और कर्तव्यपरायणता का अद्भुत सम्मिश्रण था। इन्हीं सब गुणों के कारण वह जीवन में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। पाकिस्तान के निर्माण-रूपी उद्देश्य में वह सफल हुए, यह उनके व्यक्तित्व का ज्वलंत प्रमाण है।

महात्मा गांधी और श्रीजिन्ना, दोनों गुजरात-भूमि के पुत्र थे। दोनों ही अपने उद्देश्य पूर्ण कर एक ही वर्ष में इहलोक से विदा हो गए। एक ने एकता और दूसरे ने विषमता के मार्ग का अवलंबन किया। एक अंतर्ज्योति तथा दूसरे तर्क के प्रतिनिधि थे। परंतु दोनों में अध्यवसाय तथा कर्मशीलता थी। दोनों ही महान् व्यक्तित्व तथा प्रतिभा-संपन्न थे।

यदि गांधी और जिन्ना में एकता रहती, तो निःसंदेह हमारे देश की स्थिति अत्यधिक उच्च होती। हमें इन कष्टों का सामना न करना पड़ता, और वर्तमान समय में दोनों देशों के निवासी स्वाधीनता के फलों का उपभोग करते। यदि जिन्ना कांग्रेस से पृथक् न होते, तो महात्मा गांधी के साथ ४० करोड़ जनता के हृदय में उनके प्रति भी अपार श्रद्धा होती, इसमें संदेह नहीं।

पच्चीस

भाषागत सांप्रदायिकता—एक नई संभावना

(राज्य-पुनर्गठन-बिल पास होने से पूर्व लिखित)

भाषा के आधार पर प्रांतों के निर्माण के संबंध में विचार करने के लिये नियुक्त किए गए कमीशन की रिपोर्ट के लिये उसके प्रधान श्रीएस० के० दर और सदस्य श्रीजगतनारायणलाल तथा डॉक्टर पन्नालाल को हम हृदय से बधाई देते हैं! कमीशन ने इसके लिये संबंधित क्षेत्र का विस्तृत दौरा किया है। इसलिये वह जिस निर्णय या परिणाम पर पहुँचा है, उसे जल्दी में किया गया निर्णय नहीं कहा जा सकता। सारी स्थिति का अत्यंत विवेक और विस्तार से अध्ययन कर दिए गए उसके निर्णय पर गंभीर विचार किया जाना और उस पर ध्यान दिया जाना निश्चय ही वांछनीय है, क्योंकि ध्येय, नीति, कर्तव्य और व्यवहार की परख यदि बदली परिस्थितियों, आवश्यकताओं तथा

समय की कसौटी पर नहीं की जा सकती, तो प्रगतिशील तत्त्वों का अंत हो विकास सर्वथा रुक जाता है। कमीशन ने इस प्रश्न को पाँच या दस वर्षों की किसी नियत अवधि के लिये नहीं, प्रत्युत तब तक के लिये ही स्थगित रखने का परामर्श दिया है, जब तक परिस्थितियाँ उसके अनुकूल न हो जायँ। वर्तमान अवस्था में ऐसा करना ही बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता है। हमारा सारा ध्यान और शक्ति इस समय राष्ट्र के निर्माण तथा राष्ट्रीयता के विकास पर ही लगनी चाहिए। भाषागत प्रांत-निर्माण के प्रश्न पर विचार करने से पहले रियासतों का प्रांतों के समकक्ष लाया जाना और देश में सामान्य स्थिति का उत्पन्न होना सर्वप्रथम आवश्यक है। कमीशन ने परिस्थितियों के अंतर्गत इसकी ओर संकेत भी किया है। हमें देश को केवल प्रांत तथा प्रांतीय भाषाओं की संकीर्णता में घसीट कमजोर नहीं बनाना चाहिए।

वास्तव में, भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर, देश के विभिन्न प्रांतों का बँटवारा, शासन की सुविधा आर्थिक और औद्योगिक विकास, यातायात के साधनों के उपयोग, समस्त प्रांत-निवासियों की शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार आदि की पर्याप्त साधन-संपन्नता इत्यादि को ध्यान में रखते तथा समुचित क्षेत्रफल, जन-संख्या, आय के स्रोत, भाषा, रहन-सहन और सामाजिक जीवन की निकटता आदि पर आधारित होना चाहिए।

प्रांतों के इस पुनर्निर्माण के बारे में साधारणतया कांग्रेसी तथा दूसरे भी प्रमुख लोगों का भाषावार प्रांत संगठित किए

जाने पर जोर रहा है। किंतु पिछले कुछ समय में कई प्रांतों के पुनर्विभाजन के लिये इस भाषा-संबंधी आधार को इतना कट्टरता से रक्खा गया है कि उसके कारण बहुत-से लोगों को शंका होने लगी है कि यदि प्रांतों का सर्वथा भाषाधार पुनर्निर्माण हो जायगा, तो जाति एवं धर्मगत सांप्रदायिकता की भाँति यह भाषागत सांप्रदायिकता का नया विष देश में और फैल जायगा।

बहुत कठिनाई से आज जातिगत तथा धार्मिक संप्रदायवाद कुछ क़ाबू में आया है। अभी-अभी नई शासन इकाइयों के निर्माण का फ़ैसला किया गया, तो नया भाषागत संप्रदायवाद ज़ोर पकड़ जायगा, तथा देश की नवोदित स्वाधीनता के समय जिस संगठन, एकता और शासन को सुदृढ़ करने के लिये पारस्परिक निकटता की भावना की आवश्यकता है, उसकी एवज़ यह नया ज़हर फैला देशवासियों में पृथकत्व की कट्टरता उत्पन्न कर देगा। इसीलिये हमारी राय में यह प्रश्न अभी स्थगित कर प्रांतों एवं देश की विभिन्न इकाइयों के पुनर्निर्माण के बारे में अधिक गहराई और वैज्ञानिक ढंग से विचार कर कुछ सुनिश्चित आधार तथा रीति-नीति प्रस्ताव-रूप में रखने के लिये अधिकारी विद्वानों, विशेषज्ञों को अवसर दिया जाय, एवं कुछ वर्षों बाद अच्छी तरह संगठित और सुदृढ़ देश की सरकार यह विषय हाथ में ले। वर्तमान स्थिति में राष्ट्र के हित के लिये यही एक कल्याण-मय, प्रशस्त मार्ग है।

हिंदी-प्रेमी विद्यार्थियों से

हिंदी-प्रेमी परिवारों के चुस्त विद्यार्थियों से निवेदन है, वे अपना पढ़ाई का खर्च स्वयं निकालें। हमारी पुस्तकें और भारत-भर की पुस्तकें अपने नगर के स्कूलों, कॉलेजों, लाइब्रेरियों और प्रतिष्ठित नागरिकों में पहुँचाएँ, और काफ़ी कमीशन लें। बीकानेर आदि के विद्यार्थी ऐसा कर रहे हैं। उनकी आमदनी, शाम या सुबह २-३ घंटे या छुट्टियों में काम करके, ७५) से १००) महीने की हो जायगी। सब प्रचार-सामग्री और नियम हमसे मँगवा लें। जमानत १००) की ज़रूरी है। उन्हें हम उन्हीं के नगर में किताबें बेचने के लिये दिलवा देंगे।

इंटरमीडिएट और बी० ए० के फ़र्स्ट ईयर के अथवा ९वें दर्जे के विद्यार्थी यह हिंदी-प्रचार-कार्य सुगमता से कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें उस वर्ष बोर्ड या विश्व-विद्यालय की परीक्षा देनी नहीं होती।

दुलारेलाल

संचालक और प्रधान संपादक

गंगा-पुस्तकमाला, 'माधुरी' और 'सुधा'

पत्र-व्यवहार के पते—

(१) गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, ३६, गौतम बुद्ध-मार्ग, लखनऊ
(२) भारती(भाषा)-भवन, चर्खेवालाँ, दिल्ली
(३) जवाहर-ज्योति, वंशीधर-कोठी, इलाहाबाद
(४) सावित्री-साहित्य-सदन, मच्छोदरी-पार्क, वाराणसी
(५) राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना ४
(६) आपके नगर के हमारे एजेंट, जो हों।

हमारा श्रेष्ठ साहित्य

कुबेर

लेखक, देवीप्रसाद धवन। साम्यवाद, पूँजीवाद, यथार्थ-वाद और जनवाद की सुंदर विवेचना इस रोचक उपन्यास में आप पाएँगे। मूल्य ३॥)

चंद्रगुप्त मौर्य

लेखक, मिश्रबंधु। मौर्यवंशी सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य की जीवन-गाथा खोज-पूर्ण, ऐतिहासिक घटनाओं के साथ। मूल्य ३॥)

पुष्यमित्र

लेखक, मिश्रबंधु। प्रस्तुत उपन्यास शुंग-साम्राज्य के संस्थापक पुष्यमित्र के राज्य-काल का सजीव चित्र है। मूल्य ५)

भीष्म-प्रतिज्ञा

लेखक, आचार्य चंद्रशेखर शास्त्री। महावीर, ब्रह्मचारी भीष्म के अपूर्व त्याग, कर्तव्य-निष्ठा और शौर्य की गौरव-गाथा। मूल्य २।)

सोमनाथ

लेखक, ठा० श्रीनाथसिंह। इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथ पर सुंदर विवेचना-पूर्ण गौरव-गाथा। मूल्य ३)

कवि और क्रांतिकारी

लेखक, ठा० श्रीनाथसिंह। इस उपन्यास में आधुनिक कवियों और क्रांतिकारियों का अच्छा चित्रण किया गया है। मूल्य २।)

व्यक्तिगत

लेखक, बेचन शर्मा 'उग्र'। इसमें आप व्यंग्य और हास्य पर मीठी चुटकियाँ पाएँगे। मूल्य २)

नंदन-निकुंज

लेखक, चंडीप्रसाद 'हृदयेश' बी० ए०। इसमें ६ उच्च कोटि की अपने ढंग की निराली, काव्यमय भाषा में सुंदर, रोचक कथाएँ हैं। मूल्य ३)

जीवन का सद्व्यय

लेखक, हरिभाऊ उपाध्याय (चीफ मिनिस्टर अजमेर-प्रांत)। प्रसिद्ध अँगरेज़ी पुस्तक Economy of Human life का महत्त्व-पूर्ण अनुवाद। आत्म-निर्माण पर उत्तम पुस्तक। मूल्य ३)

साहित्य-सुमन

लेखक, बालकृष्ण भट्ट। साहित्य के विभिन्न अंगों पर पांडित्य-पूर्ण निबंध। मूल्य २॥)

हिंदी-नवरत्न

लेखक, मिश्रबंधु। प्राचीन काल के नौ महाकवियों—तुलसी

सूर, कबीर, देव, बिहारी, केशव, मतिराम-भूषण, चंद वरदाई और हरिश्चंद्र की काव्य-कला और जीवन-वृत्त पर प्रामाणिक ग्रंथ । मूल्य १२)

देव और बिहारी

लेखक, कृष्णबिहारी मिश्र । महाकवि देव और बिहारी की तुलनात्मक समीक्षा । मूल्य ४॥)

साहित्य-संदर्भ

लेखक महावीरप्रसाद द्विवेदी । प्रस्तुत पुस्तक में द्विवेदीजी के अनमोल साहित्यिक लेखों का संग्रह आप पाएँगे । मू० ४)

मिश्रबंधु-विनोद

लेखक, मिश्रबंधु । हिंदी-साहित्य का सर्वप्रथम वृहत् एवं प्रामाणिक इतिहास । तीन भाग । मूल्य क्रमशः ५), ८), ५)

मग्दालिनी

लेखक, जैनेंद्रकुमार । इस छोटे से नाटक में आत्मा की एक ट्रेजडी बंद है । नाटक पढ़ने-लायक़ है । मूल्य २)

हठयोग

लेखक, योगी रामाचारक । इसमें योग के कुछ ऐसे अभ्यास दिए हैं, जिन्हें खाते-पीते उठते-बैठते, चलते-फिरते हर समय किया जा सकता है । मूल्य ४।)

खेती-बारी

लेखक, भगीरथप्रसाद दीक्षित । खेती-बारी के आधुनिक तरीक़ों पर विशद एवं प्रामाणिक ग्रंथ । मूल्य ३॥)

किसानों की कामधेनु

लेखक, गंगाप्रसाद। गाय और बैलों की कृषि-क्षेत्र में उपयोगिता का दिग्दर्शन। मूल्य ॥=)

हल्दी की खेती

लेखक, चारुचंद्र सान्याल। हल्दी की खेती करने के लिये भूमि, खाद, बीज कैसे चाहिए, इसका विस्तृत विवरण। मूल्य ।=)

मसालों की खेती

लेखक चारुचंद्र सान्याल। हमारे घरों में प्रतिदिन काम आनेवाले मसालों की उपज पर विस्तृत विवेचन। मूल्य ॥=)

अपराध और दंड

अनुवादक, व्रजकृष्ण गुट्टू। दास्तायवस्की का अद्वितीय मनोवैज्ञानिक उपन्यास। मूल्य ७)

हे बापू, हे राष्ट्र-पिता !

लेखक, भोलानाथ तिवारी। इस छोटी,सी पुस्तिका में बापू के जीवन की अंतिम घड़ी से लेकर उनके पार्थिव शरीर के जलने तक का मर्मस्पर्शी वर्णन। मूल्य ।=)